अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-02, 1-15 सितंबर, 2018

11 सितंबर : विनोबा-जयंती

विनम्र स्मरणांजलि

'गांधीजी ने बहुत बार कहा था कि : 'सत्याग्रह का शास्त्र हम लिख नहीं सकते। वह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। उस शास्त्र का हमें विकास करना होगा।''

- विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 02, 01-15 सितम्बर, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. सत्याग्रह यानी पानी में पड़ी आग... 2
2. मैं खुद भी शिक्षक ही हूं!... 3
3. शिक्षा-शास्त्री का मिशन... 5
4. भारतमाता की जय माने लोगों की... 7
5. सारी सम्पत्ति अमानत है... 8
6. बिहार के भूदानी किसानों पर आफत... 11
7. क्या भारत एक असुरक्षित राष्ट्र... 13
8. निजता का अधिकार : मानवीय... 14
9. उपन्यास - 'बा'... 16
10. कविता : मेरा सलाम लेना... 19
11. सर्वोदय दैनन्दिनी : 2019... 20

संपादकीय

सत्याग्रह यानी पानी में पड़ी आग

संत कबीर के बाद भारत में यदि कोई संत हुआ जो कबीर जैसा ही क्रांतिकारी था तो वह था विनोबा। वह कबीर की ही तरह लकीर का फकीर न था। जिस तरह कबीर ने कहा— *'जो घर जारे आपना, होए हमारे संग'*, उसी तरह संत विनोबा ने भी एलान किया—

'मैं किसी देश विशेष का अभिमानी नहीं, किसी धर्म विशेष का आग्रही नहीं, किसी संप्रदाय या जाति विशेष से बद्ध नहीं। विश्व में उपलब्ध सद्विचारों के उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय, सद्विचारों को आत्मसात् करना हमारा धर्म, विविध विशेषताओं में सामंजस्य प्रस्थापित करना, विश्व-वृति का विकास करना—हमारी वैचारिक साधना।'

विनोबा सदा जीवन में एक कुजात ब्राह्मण रहे।

जब हम लोकनायक जयप्रकाश के मार्गदर्शन में 1974 के संपूर्ण क्रांति आंदोलन के सिपाही थे, जेपी द्वारा गठित युवा संगठन, तरुण शांति सेना, बाद में छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के सिपाही बने, जब देश में आपातकाल लागू हुआ तो विनोबा द्वारा इसे 'अनुशासन पर्व' की संज्ञा दी गयी, तो स्वाभाविक रूप से विनोबा के प्रति हमारे मन में बड़ी कटुता पैदा हुई। किन्तु जब हम धीरे-धीरे परिपक्व हुए, गांधी-विनोबा और जयप्रकाश जैसे महापुरुषों को पढ़ा, समझा और उनका अनुसरण किया तो मन का सारा विकार और पूर्वाग्रह समाप्त होता गया और उनके प्रति हमारी श्रद्धा बढ़ती ही गयी। हमारा अपरिपक्व मन और विचार ही था जो गांधी के प्रथम सत्याग्रही जिसे गांधी ने न जाने कितनी कसौटियों पर परखकर 'प्रथम सत्याग्रही' बनाया होगा—भूल गये थे। यह तो भूल हमारी थी।

दक्षिण अफ्रीका में यद्यपि गांधी को अनेक समर्पित कार्यकर्ता प्राप्त थे किन्तु 1915 में उनके भारत आने पर जिन सत्यनिष्ठ और दृढ़-प्रतिज्ञ विद्वान, उच्चशिक्षा प्राप्त आत्मान्वेषी साथियों का सान्निध्य मिला, उनमें आचार्य विनोबा, काका कालेलकर, किशोरीलाल मशरूवाला, महादेव देसाई, नरहरि भाई पारीख आदि प्रमुख थे और सब गांधी को ऐसे मिले थे जैसे ये सभी अपने नायक के आविर्भाव की चिर प्रतीक्षा में रहे हों और जैसे यह ईश्वर की ही एक लीला रही हो। निःसंदेह किसी महापुरुष के विचार और दर्शन का व्यवस्थित रूप में रखने और उसे बीज रूप में आगे ले जाने में सबसे बड़ा योगदान शिष्यों और अनुयायियों का होता है। गांधी का आश्रम-जीवन इन सहयोगियों के लिए एक प्रयोगशाला बना। गांधी और विनोबा ने अपने आश्रम-जीवन में दुनिया के सामने एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत किया।

दरअसल क्रांति और शांति परस्पर टकराकर तथा गांधी और विनोबा के पास पहुंचकर एक हो जाती थी। बचपन से विनोबा को हिमालय का ज्ञानयोग, शांति और बंगाल में गूंजती 'वंदे मातरम' की क्रांति अपनी ओर खींचती थी। गांधी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में जो व्याख्यान दिया और वहां उपस्थित राजा-महाराजाओं की जिस तरह खिंचाई की थी—गांधी के शब्द 'बिना निर्भयता के अहिंसा चल ही नहीं सकती'—विनोबा को आकर्षित किया था। विनोबा हिमालय जाने के रास्ते उस व्याख्यान के बाद हिमालय और बंगाल के मध्य काशी पहुंच चुके थे। काशी से ही विनोबा ने एक पत्र लिख डाला और अपनी कतिपय जिज्ञासाएं व्यक्त की। गांधी का जवाब था जिज्ञासाएं पत्राचार से समाप्त नहीं हो सकती। समाधान बातों से नहीं जीवन से होगा। आश्रम के उद्देश्य के बारे में लिखा था— 'विश्वहित-अविरोधी देश सेवा और उसके लिए सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शरीर-श्रम और एकादश व्रत आदि। विनोबा को लगा जैसे हिमालय की शांति और बंगाल की क्रांति दोनों मिल गयी। विनोबा को गांधी अद्भुत लगे कि कैसा पुरुष है जो देश और राजनैतिक स्वतंत्रता तथा आध्यात्मिक विकास दोनों को साथ-साथ साधना चाहता है। यही विनोबा सभी कसौटियों पर खरा उतरा और गांधी का प्रथम सत्याग्रही बना, प्रयोग का एक माध्यम बना और इस तरह हिन्दुस्तान में एक अमोघ शस्त्र की खोज हुई, वह था—सत्याग्रह।

विनोबा ने कहा—सर्वोदय में सत्याग्रह का जो दर्शन हुआ, उसके परिणामस्वरूप सिलाई मिट गयी और तानाबाना एक रूप होकर अखंड वस्त्र बन गया। सत्याग्रह में संत और वीर दोनों एक हो गये। दोनों एक-दूसरे में पिरोये जाते हैं, सीये नहीं जाते। यह सत्याग्रह की खूबी है। यह एक लंबे अनुभवों का परिणाम है। इसका थोड़ा दर्शन गांधी के कारण हुआ।

विनोबा ने इस 'सत्याग्रह' की परिभाषा की—'पानी में पड़ी आग'। अन्याय के प्रतिकार का साधन। समाज में निर्माण होने वाले मसले

कैसे हल हों, इसी से सत्याग्रह का जन्म हुआ। कबीर-तुलसी जैसे संतों की परंपरा से प्रतिकार जुड़ गया। निर्वैर भी रहें और प्रतिकार भी करें। एक बड़ा भारी विचार दुनिया को मिल गया। गांधी ने कहा था कि एक भी पूर्ण सत्याग्रही मिल जाय तो पूरी दुनिया को दुखमुक्त कर देंगे। गांधी को विनोबा में एक पूर्ण सत्याग्रही दीखा। विनोबा ने 'भूदान क्रांति' कर दिखायी, जैसी दुनिया में कहीं नहीं हुई।

विनोबा ने बाद में स्वीकारा कि भूदान के दौरान उन्हें मानसिक संशोधन व चिंतन का एक बड़ा अवसर मिला। उन्हें बार-बार लगता रहा कि शंकर और रामानुज एक परंपरा छोड़ गये हैं, जिसका अध्ययन आज हजारों वर्ष बाद भी चल रहा है। उस कोटि की विभूतियां इस जमाने में रामकृष्ण परमहंस और गांधी ये दो हुईं। श्री रामकृष्ण, श्री अरविन्द, स्वामी दयानन्द, तिलक और टैगोर इन सबका अध्ययन करने का मौका मिला तो उन्होंने अपनी पूर्व परम्परा के उत्तम फलस्वरूप एक परिपूर्ण जीवन-दर्शन गांधी के विचारों में और उनके जीवन में पाया। इसी ज्ञान परंपरा का ज्ञान-बीज गहरा कैसे जाए इसके लिए उन्होंने ब्रह्मविद्या मंदिर की स्थापना की ताकि स्त्रियों की साधना भी प्रकट हो तथा विश्व-शांति हो सके जो अकेले पुरुषों से कदापि संभव नहीं है।

गांधी ने कहा था कि सत्याग्रह का शास्त्र हम लिख नहीं सकते, वह धीरे-धीरे विकसित होगा। उस शास्त्र का हमें विकास करना होगा। नये दौर में हमने सत्याग्रह को बढ़ते भी देखा, जिसमें गांधी से प्रेरणा ली गयी—यथा मार्टिन लूथर किंग जूनियर, दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला, म्यांमार में आंग शान सूकी, नाइजीरिया के केन सारो वीवा, चीन में शहीद हुए हजारों नौजवान, फ्रांस के किसान, पानी बचाने के लिए वोलीविया के 'वाटर वारियर्स', प्रकृति और पर्यावरण को बचाने के लिए 'ग्रीन पीस मूवमेंट' तथा 'अकुपाई वाल' के सत्याग्रह आदि।

गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन, विनोबा ने भूदान और जेपी ने '74 के संपूर्ण क्रांति आंदोलन में 'सत्याग्रह' की मिशाल पेश की और हमें शोषण के खिलाफ लड़ने वालों को सत्याग्रह का एक अचूक हथियार दिया।

आइए, आज *'सत्याग्रह दिवस' (11 सितंबर : विनोबा जयंती)* के अवसर पर सभी सत्याग्रहियों को विनम्र नमन करें और हम सब मिलकर सत्याग्रह शास्त्र को और भी विकसित करने की प्रतिज्ञा करें। **—अशोक मोती**

5 सितंबर : शिक्षक-दिवस

मैं खुद भी शिक्षक ही हूं!

❑ **महात्मा गांधी**

किसी समय मैं खुद भी शिक्षक था और अब भी यह दावा किया जा सकता है कि शिक्षक ही हूं। मुझे शिक्षक का अनुभव है। मैंने उसके प्रयोग करके देखे हैं। यह काम करते-करते मुझे ऐसा लगा कि जिस जाति के शिक्षक पुरुषत्व खो बैठते हैं, वह जाति कभी उठ नहीं सकती।

हमारे शिक्षक अपना पुरुषत्व जरूर गंवा बैठे हैं। जो वे करना नहीं चाहते, वही उन्हें मजबूरन करना पड़ता है। मार-पीटकर उनसे कोई कुछ नहीं कराता, लेकिन सूक्ष्म बलात्कार तो उन पर होता ही है। अपने बड़े अफसरों की धमकियों, वेतन के नुकसान या वेतन न बढ़ सकने की धमकियों या सूचनाओं से शिक्षक घबरा जाते हैं।

अब हमारे सामने ऐसा मौका आ खड़ा हुआ है, जब शिक्षक और शिक्षिकाएं अपनी जान, अपना माल और अपना वेतन, सब कुछ जोखिम में डालकर भी साहस के साथ सच्ची बात विद्यार्थियों के सामने रख दें। अगर वे ऐसा नहीं कर सकते तो अपनी आजीविका का साधन उन्हें छोड़ देना चाहिए। इतना अगर आज मैं शिक्षकों को बता दूं, तो मेरा आज का काम निपट गया। मेरे खिलाफ शास्त्रीजी जैसे महान शिक्षक हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय-जैसी संस्था के संस्थापक पंडित मालवीयजी भी मानते हैं कि मैं जनता को उलटे रास्ते ले जा रहा हूं। जो राष्ट्रवादी दल के हैं, उन्हें भी शंका है। फिर भी मुझे लगता है कि मैं सही रास्ते पर हूं।

बगदाद से आये हुए एक सज्जन ने मुझे वहां का अनुभव सुनाया, जिससे मैं चकित हो गया हूं। मैं कहता हूं कि हिन्दुस्तान में रहना मेरे लिए मुश्किल हो गया है। अगर मैं चौबीसों घंटे असहयोग का ही विचार न करता रहूं, सोते वक्त भी मेरा मन इसी विचार से शांत होता है तो मेरे लिए हिन्दुस्तान में रहना असंभव हो जाये। मैं जानता हूं कि बगदाद के अपढ़ अरब हमसे सैकड़ों दरजे आगे बढ़े हुए हैं। ये सज्जन कोई मामूली आदमी नहीं हैं। वे बगदाद में सरकारी नौकरी में बड़े ओहदे पर थे। वे अंग्रेज सरकार के दुश्मन नहीं हैं। उन्होंने मुझसे वही कहा है, जो उन्हें अनुभव हुआ। गंगाबेन ने (एक विधवा महिला जो बाद में साबरमती आश्रम में रहने लगीं। उन्होंने गांधीजी के अनुरोध पर बीजापुर में चरखे की खोज की थी) उनसे पूछा, क्या वहां अंग्रेजों का राज्य कायम रहेगा?'' उन्होंने कहा, ''वह क्या हिन्दुस्तान है?'' जब तक एक भी अंग्रेज मैसोपोटामिया में रहेगा, तब तक अरब चैन से नहीं बैठेंगे। अरबों के पास गोला-बारूद या तलवार वगैरा नहीं है, होगा भी तो निकम्मा। किन्तु एक सामग्री उनके पास जरूर है। वे मानते हैं कि ''यह देश हमारा है। अपने इस देश में, जिसे हम न रहने दें, वह एक पल भी नहीं रह सकता।''

अंग्रेज सरकार ने वहां जितने सिख सैनिक भेजे, उन सबको उन्होंने काट डाला। मैं हिन्दुस्तान को यह सीख नहीं देता। मैं तो उलटे इस तरफ जाने से लोगों को रोकता हूं। अरबों का सिखों से कोई विरोध नहीं था। हमें तो यही देखना है कि अरबों का मकसद क्या था? अंग्रेजों ने उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाई। बगदाद में इतनी गरमी पड़ती है कि आप सब जैसे यहां बैठे हैं, वैसे वहां की रेत में नहीं बैठ सकते। वहां की रेत इतनी तप जाती है कि उस पर खाना पकाया जा सकता है। अंग्रेज सरकार ने कहा कि हम तुम्हारे लिए पक्की सड़कें बनायेंगे, रेल लायेंगे और जिनसे तुम्हें सुख मिले, वे सब सहूलियतें कर देंगे। तुम्हें शिक्षा देंगे। मोटर भी अरबों ने पहले-पहल अभी-अभी देखी। किन्तु अरब तो एक ही बात जानते थे। उन्होंने कहा, ''तुम हमारा मुल्क लेने आये हो।'' यहां के मुसलमानों से पहले ही मैसोपोटामिया के मुसलमान, अंग्रेजों को अपने देश से निकाल रहे हैं।

अंग्रेजों के हवाई जहाज उन्हें डरा नहीं सकते। हवाई जहाज हो या और कुछ हो, अरबों को इससे क्या? वे तो प्राणों को हथेली पर लिये फिरते हैं। उनके पास है क्या, जो कोई ले लेगा? वे अपने खुद के लिए नहीं लड़ते। उनके कपड़े चमड़े के होते हैं। वे तम्बे में रहने वाले ठहरे। अपने देश को, भले ही वह रेतीला हो, उन्हें बचाना है। बगदाद शरीफ में, जो पाक जमीन है और जहां कई पीर हो चुके हैं, बिना इजाजत के कौन जा सकता है? वहां अंग्रेज, सिख या उनके भाई-बंधु कोई नहीं रह सकता।

अरब हमसे कहीं ज्यादा बढ़े-चढ़े हैं। ''यह हमारा देश है, इस पर कोई अंगुली उठाये तो हम उसकी अंगुली काट डालेंगे, तीसरे को यहां रहने न देंगे।'' इस जोश में हैं, वे ही वास्तव में सुखी हैं। यदि हम मानते हों कि अरब जंगली हैं और हम सभ्य हैं, तो हम उनके और खुद अपने साथ बेइनसाफी करते हैं। हमें गुलाम होने पर भी थोड़े-बहुत सुख और भोग मिलते हैं। जब तक इस तरह के भोग-विलास की इच्छा हम रखते हैं तब तक हम अरबों से घटिया ही हैं।

हमारे बाप-दादा कह गये हैं, वेदों और उपनिषदों में कहा गया है कि पवित्र भूमि को अपवित्र न होने दो। दूसरे लोग तुम्हारी धरती पर पैर रखें तो मेहमान बनकर ही रख सकते हैं। जिसने आजादी को खो दिया, उसने सब कुछ खो दिया; अपना धर्म भी खो दिया।

मैं यह नहीं मानता कि अंग्रेजी राज्य में हम अपना धर्म शांति से पाल सकते हैं और मुसलमानी राज्य में नहीं पाल सकते थे। मैं जानता हूं कि मुसलमानी राज्य पीड़क था; उसमें घमंड था। आज का अंग्रेजी राज्य तो नास्तिक है, धर्म से विमुख है। इस राज्य में हमारा धर्म जोखिम में पड़ गया है।

हमारे आसपास के मुल्कों में पठानों, ईरानियों और अरबों की हालत हमसे अच्छी है। हमारी-जैसी शिक्षा उन्हें नहीं मिलती, फिर भी वे हमसे बढ़कर हैं।

इस तरह अपनी दीन दशा का चित्र खींचने के बाद, मैं शिक्षकों के सामने अपना मामला पेश करता हूं। जब तक हम अपनी शिक्षा को कुरबान करने के लिए तैयार न होंगे, तब तक हम देश को स्वतंत्र नहीं कर सकेंगे।

आजकल बहुत से विद्यार्थी मेरे पास आकर अपनी बात इस ढंग से कहते हैं कि दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। फिर भी मैं देखता हूं कि वे घबराये हुए हैं। वे ऐसे सवाल करते हैं कि आज हम स्कूल छोड़ दें तो कल ही दूसरा स्कूल मिलेगा या नहीं। यह शिक्षा का मोह है। यह कोई नहीं कह सकता कि मैं शिक्षा का विरोधी हूं। मैं पल भर भी पढ़े या विचार किये बगैर नहीं रहता। लेकिन जब चारों तरफ आग लगी हो तो हम डिकन्स (चार्ल्स डिकन्स 1812-1870; 19वीं शताब्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय अंग्रेज उपन्यासकार) या 'बाइबल' लेकर पढ़ने नहीं बैठ सकते। इस वक्त देश में दावानल सुलगा हुआ है। इस समय शिक्षा का मोह हमें हरगिज न रखना चाहिए।

अगर आप निश्चित रूप से यह मानते हों कि अंग्रेजों ने पंजाब ओर खिलाफत के मामले में हिन्दुस्तान पर जुल्म किया है, उसे दगा दी है, तो जब तक इस जुल्म का वे पूरा प्रायश्चित न करें, अपना मैला दिल पूरी तरह साफ न कर लें तब तक उनसे किसी तरह का दान, वेतन या शिक्षा लेना बड़ा भारी पाप है। हम राक्षस से शिक्षा नहीं ले सकते। मैले हाथों से दिया जाने वाला शुद्ध-से-शुद्ध शिक्षण भी मैला ही है। अंग्रेज तो अपनी गंदगी को भी सफाई कहकर बताते हैं।

इस वक्त हममें जो दीनता है, पामरता है और हम जिस भ्रम में पड़े हुए हैं, वह अंग्रेजी शिक्षा का ही प्रताप है। यह कहना सरासर झूठ है कि हमें अंग्रेजी शिक्षा न मिली होती तो हम इस वक्त कोई हलचल न करते होते।

देश के लिए मर मिटने की जो वृत्ति अरबों में है, वह हममें नहीं है। मैं भविष्यवाणी करता हूं कि जब तक हम ऐसी गिरी हुई हालत से बाहर नहीं निकलेंगे, तब तक हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो सकेगा।

शिक्षकों और प्रोफेसरों से मैं हिम्मत के साथ कहता हूं कि प्रजा में उमंग और उत्साह भरना हो, तो आप कल ही इस्तीफा दे दें। इस्तीफा देने वाला शिक्षक विद्यार्थियों को बड़े-से-बड़ा सबक सिखायेगा।

अगर शिक्षकों में वीरता या बहादुरी आ जाये, उनकी समझ में आ जाये कि जो सल्तनत इन्साफ नहीं करती और अपने अन्याय का प्रायश्चित नहीं करती, उससे वेतन नहीं लिया जा सकता, तो गुजरात में आज ही स्वराज हो जाये। शिक्षक अगर हिम्मत करके कहें कि हम भीख मांगकर भी, सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा ही देंगे, तो आकाश में देवता भी देखने आयेंगे और रुपयों की वर्षा करेंगे।

(गुजराती से), नवजीवन, 3-10-1920 ❑

5 सितंबर : शिक्षक दिवस पर विशेष

शिक्षा-शास्त्री का मिशन

❑ काका कालेलकर

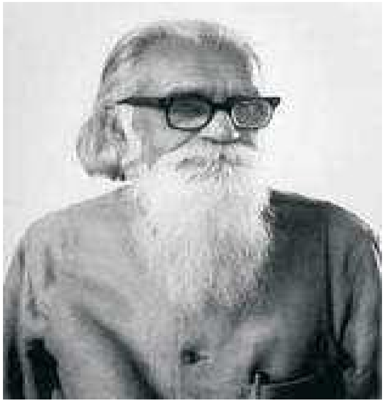

लोकमान्य तिलक की एक बात पुनः पुनः याद आती है। वे कहते थे कि कवि स्वयंभू होता है, कोई उसे बनाता नहीं है। यह बात जितनी सच है, उतनी ही वह बात सच है कि शिक्षक और पत्रकार भी स्वयंभू होता है। उनको यह महसूस होना चाहिए कि दुनिया को देने लायक मेरे पास कुछ है और वह नहीं दूंगा तो दुनिया डूब जायेगी। जिन्होंने सारे जीवन का विचार किया हो, हमारे सामाजिक जीवन के लिए हम खुद जिम्मेवार हैं, यह जिनके मन में दृढ़ हो गया हो उनमें ही लोकमान्य कहते हैं वैसी वृत्ति उद्‌भव हो सकती है।

शिक्षा जीवन के लिए है, जीवन-व्याप्त है इतना जिनके मन में दृढ़ हो गया हो वही स्वयंभू शिक्षक है। शिक्षा के सिद्धांत, शिक्षा के विषय और शिक्षा की पद्धतियां यह सब जीवन के लिए हैं; जीवन को सार्थक, समृद्ध और सफल करने के लिए है। बरात में आये हुए बराती यदि भीड़ करके दुल्हन और दुल्हे को घर से निकाल देंगे तो कैसे चलेगा? वैसे ही यदि कोई जीवन का विचार बाजू पर रखकर शिक्षा देने का प्रयास करे तो कैसे चलेगा? फिर भी आखिरी सौ-पचास वर्षों में हम दूसरा क्या करते आये हैं? हमारे समाज-सेवकों ने शिक्षा को जीवनचर्या में प्रमुख स्थान दिया नहीं है, और हमारे शिक्षा-शास्त्रियों ने अपनी चर्चा में जीवन-रहस्य को स्थान दिया नहीं है! अतः शिक्षा के पीछे पैसों का और बच्चों का बड़ा योग दिये जाने पर भी समाज शिक्षा में जाग्रत रस लेने वाला नहीं हुआ और शिक्षा में भी रस जमा नहीं है। फिर स्वयंभू शिक्षकों की फसल देश में आयेगी कहां से?

जिस काल को हम आधुनिक समय कहते हैं उस काल में सारे सामाजिक जीवन को हिला दे वैसे तीन-चार आंदोलन शुरू हो चुके हैं। लोगों के पांव के नीचे कोई आधार रह न सके वैसे बड़े-बड़े तीन-चार प्रवाह आ गये हैं और उसका असर हम अपने जीवन पर पूरा-पूरा देख सकते हैं।

हमारे यहां जो धार्मिक सुधारक हुए उन्होंने हमारे धार्मिक विचार और धर्म-जीवन का इतना मंथन किया कि उसके परिणामस्वरूप अपना स्वयं का ऐसा कुछ रहता है कि नहीं उसके बारे में भी समाज साशंक हुआ। लेकिन उस मंथन के परिणामस्वरूप स्वामी विवेकानंद, रामतीर्थ, अरविंद घोष, गांधीजी जैसे धर्म सुधारक हमारे यहां हुए और उन्होंने हिन्दू धर्म को नई चमक दी। इतना ही नहीं लेकिन अत्यंत गूढ़ और सूक्ष्म विचार भी समाज में फैलाकर उन्हें झेलने जितनी शक्ति लोगों में पैदा की। सोए हुए समाज को जाग्रत करके, झकझोर कर, अस्वस्थ करके उसे नये रास्ते पर चलायमान किया।

हमारे यहां समाज-सुधारकों की फसल आयी। उन्होंने भी जाति-व्यवस्था, विवाह की रूढ़ियां, स्त्रियों का समाज में स्थान वगैरह हरएक सामाजिक प्रश्न पर अपनी तर्क-शक्ति और बुद्धि का हल चलाया। इस जोताई के परिणामस्वरूप जाति-परिषदें खड़ी हुईं, परस्पर विरोध हुआ, लेकिन आखिर समाज-शास्त्र पर ये लोग भी गंभीरता से विचार करने लगे।

हमारे यहां राजकीय विचारों की क्रांति शुरू हुई। उसके लिए राष्ट्रीय महासभा कायम हुई। संसार-सुधार एवं राजकीय सुधार आपस में लड़े। महासभा में पक्ष बने। उसके लिए राजनीतिज्ञ लोग और विचारवीर वक्ता देश के कोने-कोने में पहुंच गये अथवा कोना-कोना छान मारा, कहें तो चलेगा। उन्होंने देश के हरएक मनुष्य को राजनीतिक परिस्थिति और राजनीतिक सिद्धांतों के बारे में विचार करने को विवश कर दिया। बड़े-बड़े आंदोलन हुए और दुनिया के राजकीय विचारों में हमारा हिस्सा भी जुड़ गया।

इन तीनों प्रवाहों में वीरता का लक्षण स्पष्ट दिखायी देता है। धर्म-सुधारक धर्म के नाम से मर-मिट रहे हैं; समाज-सुधारक अपने ही देश-बंधुओं का तिरस्कार और जुल्म के भोग बने हैं और मरण से भी विषम स्थिति मूक धीरज से भोग रहे हैं। राजकीय सुधारकों के स्वार्थ-त्याग की तो बात ही क्या? सरकार के गुप्तचरों की शनिदृष्टि, कारावास, फांसी और सामाजिक बहिष्कार उन्हीं का मानो महोत्सव! इन तीनों वीरों को यह विचार कभी नहीं आया कि अपना विषय लोगों को प्रिय होगा या नहीं? यह चिन्ता उनको हुई नहीं कि लोग हमारा कथन कान लगाकर सुनेंगे या नहीं, अपने आंदोलन के लिए फंड की सुविधा होगी या नहीं। विधवा की तरह जीने की इच्छा से स्थाई फंड की सुविधा करने वे बैठे नहीं थे। वे अपने उत्साह से ही उत्साहित थे। अपने कार्य के महत्त्व और स्थायित्व पर ही उनको विश्वास था। यह कैसे हो सकता है कि लोग हमारा सुनेंगे ही नहीं। क्या लोगों को जिन्दा नहीं रहना। सोये हों तो उन्हें जगायें। उठने की मना करें तो उनको चुटकी भरें, लोग गंभरवेदी (thick-skinned) हों तो आलपीन घोंपें। लेकिन जब तक हमारी बात नहीं मानेंगे, तब तक हम आराम लेने वाले नहीं हैं और दूसरों को भी आराम लेने नहीं देंगे। इस तरह वे मानते आये हैं और जीतते आये हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में उनके प्रमाण में हमने क्या किया है? स्वतंत्र रूप से क्या किया है? प्रार्थना-समाज ने और आर्य-समाज ने शिक्षा को कुछ गति दी। समाज-सुधारक अपने सहायक के तौर पर शिक्षा को हाथ देते हैं और राजनीतिज्ञ नेता भी अपने आंदोलन को गहरा स्वरूप देने के लिए और नवजवानों में

से नई भरती करने के लिए शिक्षा को राष्ट्रीय स्वरूप देकर अपनी फौज में उन्हें दाखिल करते हैं। लेकिन शिक्षा-शास्त्रियों ने खुद स्वतंत्र प्रयत्न कितने किये हैं। यह बात तो नहीं है कि हमारे यहां समर्थ शिक्षा-शास्त्री नहीं हुए, लेकिन यह कहिए कि जीवन-समस्त का विचार करने वाले लोगों ने शिक्षा को अपना प्रधान क्षेत्र गिना नहीं है। अथवा यह कहें कि शिक्षा-शास्त्रियों ने जीवन की दृष्टि से विचार नहीं किया; लेकिन इतनी बात तो सच है कि शिक्षा के क्षेत्र में नया उत्साह, नया विप्लव अथवा नई क्रांति अभी तक पूरी तरह पूरी हुई नहीं है और शिक्षा का संदेश, शिक्षा की स्मृति या शिक्षा का काव्य जन-समाज के समक्ष तो पेश हुए ही नहीं हैं। सरकारी शिक्षा पद्धति पर अथवा देहात के बिचारे शिक्षक की पद्धति पर टीका करने वाले कुछ वक्ता और लेखक निकल आते हैं, लेकिन वह टीका इतनी छिछली और अज्ञानमूलक होती है कि उसका सहज जनरंजन करने के उपरांत कोई असर नहीं होता। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शिक्षा का महत्त्व, शिक्षा का प्रभाव और शिक्षा की शक्ति के बारे में लोग कुछ नहीं जानते, लेकिन यह दुःख की बात है कि शिक्षा का फुटकर बंटवारा करने वाले शिक्षक भी कुछ जानते नहीं हैं।

हमें प्रजा को समझाना चाहिए कि जहां धर्म-सुधार सफल नहीं होता, जहां स्मृतियां काम नहीं कर सकतीं, जहां औद्योगिक आंदोलन पंगु साबित होता है, जहां सामाजिक सुधार निष्प्राण मालूम होता है, और राजनीतिक आंदोलन थक जाता है वहां आखिर शिक्षा ही सहायक होती है।

अपबल तपबल और बाहुबल,
चौथा है बल राम।
सूर किशोर कृपा से,
सब बल हारे को हरिनाम।

इस तरह जैसे कवि ने गाया है, वैसे हमें भी लोगों के मन पर दृढ़ करना चाहिए कि जब तमाम उपाय हार जाते हैं, तब सच्ची शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा, समाज के लिए संजीवनी रूप हो जाती है।

समाज-सुधारक जीवन का गांभीर्य समझे नहीं, सामाजिक मनोरचना को पहचाने नहीं, और जन-समाज जड़ता के कारण कुछ सोचने को ही मना करे वहां समाज में नवचेतन कहां से आये? राजकीय आंदोलन में जरूरी स्वार्थ-त्याग तथा एकता के लिए जरूरी एकदिली जब तक न आये और सब लोग, जब तक असुविधा भुगतने को तैयार न हों, तब तक स्वराज्य मिल नहीं सकता। आत्मा पर दृढ़ श्रद्धा और पारमार्थिक जीवन की अभिलाषा नहीं, तब तक धार्मिक सुधार नये झगड़े का साधन हो जायेगा। सब तरह से ऐसी कमजोरी देखने के बाद 'तब क्या करेंगे?' ऐसा जब सवाल उठता है, तब एक ही जवाब मिलता है कि प्रजा को प्राणदायी शिक्षा दो। शिक्षा से ही राष्ट्र संजीवन होगा, शिक्षा से ही प्रजा में नया उत्साह आयेगा। शिक्षा से ही प्रजा वृद्धावस्था की केंचूली निकाल देगी और उसमें जवानी का जोश आयेगा।

लेकिन वह शिक्षा देने वाले व्यक्ति को सामाजिक परिवर्तन, धार्मिक मनोमंथन, औद्योगिक जागृति और राष्ट्रीय आंदोलन का रहस्य, उसका इतिहास, उसकी कमियां वगैरह सब जानकारी होनी चाहिए : उसके बाद ही टीले के ऊपर खड़े रहकर समाज को जगाने के लिए वह रणभेरी फूंक सकेगा। और लोगों का अवधान प्राप्त कर सकेगा। 'तमाम आराम हमेशा के लिए हराम है।' मेझीनी का यह वाक्य शिक्षा-शास्त्री के मुंह से समाज को नहीं देना चाहिए। शिक्षा-शास्त्री ही समाज को सावधान कर सकता है। शिक्षा-शास्त्री ही आत्मोन्नति का शुभ मुहूर्त लोगों को जाहिर कर सकता है।

आज शिक्षा-शास्त्री का मुख्य काम अपने ईश्वरी कार्य को पहचानना है, पहचानने के बाद उसके लायक होना है और लायक होने के बाद उसकी दीक्षा, लेकिन एकनिष्ठा से कार्य का स्वात्मार्पण करना है। ❑

लोकतंत्र के प्रहरी श्री कुलदीप नैयर जी को श्रद्धांजलि

लोकतंत्र के प्रहरी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रक्षक **श्री कुलदीप नैयर** की 95 वर्ष की उम्र में 23 अगस्त, 2018 को दिल्ली में निधन हो गया है।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष **श्री महादेव विद्रोही** ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि देते हुए कहा है कि श्री कुलदीप नैय्यर जी के निधन से भारतीय पत्रकारिता की अपूरणीय क्षति तो हुई ही है साथ ही सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपना एक जागरूक अभिभावक खो दिया है।

श्री कुलदीप नैयरजी का जन्म 14 अगस्त 1923 को सियालकोट में हुआ। आपने उर्दू प्रेस से अपनी पत्रकारिता की शुरुआत की। वे 'द स्टेट्समैन' एवं 'इंडियन एक्सप्रेस' के संपादक रहे। दुनिया के 80 के अधिक समाचार पत्रों में 'बिटविन दी लाईन' के नाम से उनका कॉलम छपता था। वे 1966 में संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के प्रतिनिधि तथा 1990 में इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त थे। उन्हें राज्यसभा में मनोनीत किया गया।

आप लोकनायक जयप्रकाश नारायण के वरिष्ठ सहयोगी थे। आपको आपातकाल में गिरफ्तार कर जेल में रखा गया। आपने 'राष्ट्रीय संपूर्ण क्रांति मंच' तथा 'सिटीजन्स फॉर डेमोक्रसी' के अध्यक्ष की जिम्मेवारी भी बखूबी निभायी।

श्री नैयर भारत एवं पाकिस्तान की जनता के बीच दोस्ताना संबंध के हिमायती थे। वे हर वर्ष वाघा सीमा पर 14 अगस्त की रात में मोमबत्तीयों से प्रदर्शन करते थे, पाकिस्तान के लोग भी सहभागी होते थे।

25 अगस्त 2018 को सर्व सेवा संघ द्वारा दिल्ली में *'कश्मीर में शांति एवं लोकतंत्र की स्थापना'* विषय पर होने वाली राष्ट्रीय संगोष्ठी का आप उद्घाटन करने वाले थे। उनके अनायास निधन से देश की भारी क्षति हुई है। सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसैन, मंत्री रमेश पंकज, प्रकाशन संयोजक अरविन्द अंजुम तथा सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती ने श्री कुलदीप जी के परिवार जनों के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट की है। **मारोती गावंडे,** कार्यालय मंत्री

भारतमाता की जय माने लोगों की जय

❑ पं. जवाहरलाल नेहरू

अकसर जब मैं एक जलसे से दूसरे जलसे में जाता और इस तरह चक्कर काटता रहता था तो अपने सुनने वालों से अपने इस हिन्दुस्तान या भारत की चर्चा करता था। भारत एक संस्कृत शब्द है और यह इसके परंपरागत संस्थापक के नाम से निकला हुआ है। मैं शहरों में ऐसी बात कम करता, क्योंकि वहां के सुनने वाले कुछ ज्यादा सयाने होते थे और उन्हें दूसरे ही किस्म की गिजा की जरूरत थी। लेकिन किसानों से, जिनका नजरिया महदूद था, मैं इस बड़े देश की चर्चा करता, जिसकी आजादी के लिए हम लोग कोशिश कर रहे थे और उन्हें बताता था कि किस तरह देश का एक हिस्सा दूसरे से जुदा होते हुए भी हिन्दुस्तान एक था! मैं उन मसलों का जिक्र करता, जो उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक, किसानों के लिए यक-सां थे, और स्वराज्य का भी जिक्र करता, जो थोड़े लोगों के लिए नहीं, बल्कि सभी के फायदे के लिए हो सकता था।

मैं उत्तर-पश्चिम में खैबर के दर्रे से धुर दक्षिण में कन्याकुमारी तक की अपनी यात्रा का हाल बताता और यह कहता कि सभी जगह किसान मुझसे एक-से सवाल करते, क्योंकि उनकी तकलीफें एक-सी थीं—यानी गरीबी, कर्ज, पूंजीपतियों के शिकंजे, जमींदार, महाजन, कड़े लगान और सूद, पुलिस के जुल्म—और ये सारी बातें गुंथी हुई थीं उस ढढ्ढे के साथ, जिसे एक विदेशी सरकार ने हम पर लाद रखा था और जिससे छुटकारा भी सभी को मिलकर हासिल करना था। मैंने इस बात की कोशिश की कि लोग सारे हिन्दुस्तान के बारे में सोचें और कुछ हद तक इस बड़ी दुनिया के बारे में भी, जिसके हम एक जुज हैं। मैं अपनी बातचीत में चीन-स्पेन, अबीसिनिया, मध्य-यूरोप, मिस्र और पश्चिमी एशिया में होने वाली कशमकशों का जिक्र भी ले आता। मैं उन्हें सोवियत यूनियन में होने वाली अचरज-भरी तब्दीलियों का हाल भी बताता ओर कहता कि अमेरिका ने कैसी तरक्की की है।

नदी, पहाड़, पर्वत श्रेणी और उसके उत्तुंग शिखरों से तथा इन सबसे ऊपर चमकने वाले तारों से परिचय बढ़ाकर हमें भारत-भक्ति में अपने पूर्वजों के साथ होड़ चलानी चाहिए। हमारे पूर्वजों की साधना के कारण गंगा के समान नदियां, हिमालय के समान पहाड़, जगह-जगह फैले हुए हमारे धर्म क्षेत्र, पीपल या बड़ के समान महावृक्ष, तुलसी के समान पौधे, गाय जैसे जानवर, गरुड़ या मोर के जैसे पक्षी, गोपीचंदन या गेरू के जैसी मिट्टी के प्रकार–सब जिस देश में भक्ति और आदर के विषय बन गये हैं, उस देश में संस्कारों की, भावनाओं की समृद्धि को बढ़ाना हमारे जमाने का कर्तव्य है। हम अपने प्रिय-पूज्य देश को साहित्य द्वारा और दूसरे अनेक रचनात्मक कामों से सजायेंगे और नई पीढ़ी को भारत-भक्ति की दीक्षा देंगे। –काका कालेलकर

यह काम आसान न था, लेकिन जैसा मैंने समझ रखा था, वैसा मुश्किल भी न था। इसकी वजह यह थी कि हमारे पुराने महाकाव्यों ने और पुराणों की कथा-कहानियों ने, जिन्हें वे बखूबी जानते थे, उन्हें इस देश की कल्पना करा दी थी, और हमेशा कुछ लोग ऐसे मिल ही जाते थे, जिन्होंने हमारे बड़े-बड़े उन तीर्थों की यात्रा कर रखी थी, जो हिन्दुस्तान के चारों कोने पर हैं। या हमें पुराने सिपाही मिल जाते, जिन्होंने पिछली बड़ी जंग में या और धावों के सिलसिले में विदेशों में नौकरियां की थीं। सन् 1930 के बाद जो आर्थिक मंदी पैदा हुई थी, उसकी वजह से दूसरे मुल्कों के बारे में मेरे हवाले उनकी समझ में आ जाते थे।

कभी ऐसा भी होता कि जब मैं किसी जलसे में पहुंचता, तो मेरा स्वागत 'भारतमाता की जय!' के नारे से जोर के साथ किया जाता। मैं लोगों से अचानक पूछ बैठता कि इस नारे से उनका क्या मतलब है? यह भारतमाता कौन है, जिसकी वे जय चाहते हैं? मेरे सवाल से उन्हें कुतूहल ओर ताज्जुब होता और कुछ जवाब न बन पड़ने पर वे एक-दूसरे की तरफ या मेरी तरफ देखने लग जाते। मैं सवाल करता ही रहता। आखिर एक हट्टे-कट्टे जाट ने, जो ना मालूम कितनी पीढ़ियों से किसानी करता आया था, जवाब दिया कि भारतमाता से उनका मतलब धरती से है। कौन-सी धरती?

इस तरह सवाल-जवाब चलते रहते, यहां तक कि वे ऊब कर मुझसे कहने लगते कि मैं ही बताऊं। मैं इसकी कोशिश करता और बताता कि हिन्दुस्तान वह सब कुछ है जिसे उन्होंने समझ रखा है, लेकिन वह इससे भी बहुत ज्यादा है। हिन्दुस्तान के नदी ओर पहाड़, जंगल और खेत, जो हमें अन्न देते हैं, ये सभी हमें अजीज हैं। लेकिन आखिरकार जिनकी गिनती है वे तो हैं हिन्दुस्तान के लोग, उनके और मेरे जैसे लोग, जो इस सारे देश में फैले हुए हैं। भारतमाता दरअसल ये ही करोड़ों लोग हैं, और 'भारतमाता की जय' से मतलब हुआ इन लोगों की जय! मैं उनसे कहता कि तुम इस भारतमाता के अंश हो, एक तरह से तुम भी भारतमाता हो, और जैसे-जैसे ये विचार उनके मन में बैठते, उनकी आंखों में चमक आ जाती। इस तरह कि मानो उन्होंने कोई बड़ी खोज कर ली हो। ❑

सारी सम्पत्ति अमानत है

❑ गणेश गद्रे

हम अपनी बात पंचतंत्र की चार बुद्धिमानों की कहानी से आरंभ कर सकते हैं। उनमें से एक दुनियादारी में कुशल और बाकी तीन वैसे ही थे। वे रुपया कमाने के लिए घर से निकले थे और एक जंगल में से गुजर रहे थे। जंगल में उन्हें एक जगह कुछ हड्डियां बिखरी मिलीं। पहले बुद्धिमान ने एक मंत्र पढ़ा। और लो हड्डियां सिमटकर ढांचा बन गयीं। किसी एक बड़ने जानवर का ढांचा दिखने लगा था। अब दूसरे बुद्धिमान ने अपनी मंत्र-शक्ति से उस ढांचे पर मांस औरप त्वचा चढ़ा दी। अब तो ढांचा आकार में बदल गया था—एक शेर ने अपना पूरा आकार ले लिया था। तीसरे बुद्धिमान ने मंत्र पढ़कर उस शरीर में प्राण फूंक दिये। उस शेर में जैसे ही जीवन का संचार हुआ, वह उन तीनों बुद्धिमानों को निगल गया। दुनियादारी में कुशल चौथा विद्वान न जाने कब बगल के पेड़ पर चढ़ गया था, इसलिए वह इन सत्य के प्रयोगों से बच गया था!

अमानतदारी का मंत्र गांधीवाद के ढांचे में नये सिरे से प्राण फूंक सकता है ओर यदि यह पुनर्जीवित हो गया तो हमें, हमारी आरामकुर्सियों सहित निगल जायेगा।

मुझे यकीन है कि हम सब उन तीन बुद्धिमानों की परंपरा के हैं, और सत्य के अनुसरण में आत्मरक्षा की जगह आत्म-बलिदान पसंद करेंगे। हम इस साहसिक कार्य में देश के बुद्धिजीवी, सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के साहचर्य की आशा कर सकते हैं। टाटा अमानतदारी पर अपनी दृष्टि से परीक्षण कर रहे हैं। इसी तरह श्री घनश्यामदास बिड़ला ने सिद्धांततः अमानतदारी के दायित्वों को स्वीकार कर लिया था और 1929 में शोलापुर में व्यापारियों के एक सम्मेलन में कहा था, ''यदि वह स्थिति आती है, तो हमें सबकी भलाई के लिए आत्म-बलिदान के लिए तैयार रहना चाहिए।''

गांधीवाद मांसाहारी न होने के कारण हमारे शरीरों को तो शायद न खाये, पर वह निश्चय ही हमें हमारे सभी अनुचित विशेषाधिकारों से जरूर वंचित कर देगा। स्वाधीनता की भोर में गांधीजी ने कहा था, ''...भारत को यदि स्वाधीनता का आदर्श जीवन जीना है, जो संसार के लिए ईर्ष्या की चीज होगी, तो भंगी, डॉक्टर, वकील, अध्यापक, व्यापारी और अन्य सभी को ईमानदारी से किये गये दिन-भर के काम की एक-सी मजदूरी मिलनी चाहिए।''

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महात्मा गांधी चेयरमैन माओ से अधिक आमूल क्रांतिकारी थे। गांधीवाद बंदूक की नली का सहारा लिए बिना, लिंकन के स्वतंत्रता-प्रेम को लेनिन के समानता के आग्रह से जोड़ने की कोशिश करता है। इसलिए हमें एक ऐसा समाज स्थापित करने के लिए जो स्वतंत्रता और समानता दोनों को अंगीकार करे, एक प्रभावशाली अहिंसात्मक रणनीति अपनानी होगी। यदि हम सफल हो जाते हैं, तो हमारा देश विश्व को परमाणु-अस्त्रों के सर्वनाश से बचा सकता है और मानवजाति की और भी उच्च तथा महान सत्यों की खोज में सहायता कर सकता है। यही तो मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

गांधीजी का तरीका यह था कि वे समाज की बीमारियों के लिए ऐसी कुनैन की व्यवस्था करते थे जिस पर चीनी की परत चढ़ी होती थी। कटु से कटु सत्यों को वे अहिंसा की मोटी परत में लपेट कर देते थे। पर उनके कुछ अनुयायियों ने ऊपर की चीनी को चाट लेने और कुनैन को थूक देने का तरीका निकाल लिया। अमानत के सिद्धांत के साथ भी इन लोगों ने यही किया। आध्यात्मिक और नैतिक परतों की वे स्तुति करते नहीं थकते, पर जब भीतर के कड़वे भाग का सवाल आता है तो मौजूदा समाज-व्यवस्था को बदलने और अमानत के सिद्धांत से उसका तालमेल बैठाने का कोई तरीका सुझाए बिना ही चल देते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि कोरी कथनी कभी भी करनी की जगह नहीं ले सकती। वैयक्तिक नैतिकता आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को सुलझा नहीं सकती। वैयक्तिक नैतिकता आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को सुलझा नहीं सकती। व्यापारियों को केवल अंतर्विवेक से काम करने का आह्वान देकर, उनकी अनुत्तरदायी ढंग से काम करने की शक्ति पर अंकुश नहीं रखा जा सकेगा। ''दुरुपयोग की स्वतंत्रशक्ति को शक्ति से ही नियंत्रित करना आवश्यक है, अंतर्विवेक से नहीं।'' गांधीवादका कोई भी विद्यार्थी अमानतदारी पर गांधीजी के कथनों को यदि धैर्य से एकत्रित करे, तो उसे वहां अमल में लाने के स्पष्ट और सशक्त आदेश मिल सकते हैं। गांधीजी का अमानत का सिद्धांत दीन और दुर्बल 'दरिद्रनारायण' को शक्तिशाली नरसिंह में बदल सकता है, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की सभी कूट व्यवस्थाओं को चीर-फाड़ डालेगा।

सम्पत्ति और मानव निष्पत्तियों के सभी रूप या तो प्रकृति की देन हैं, या सामाजिक जीवन का पैदावार। अतः उन पर व्यक्ति का नहीं, समाज का अधिकार है और उनका उपयोग सबकी भलाई के लिए होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक और शारीरिक योग्यताएं और भौतिक सम्पत्ति समाज की अमानत समझनी चाहिए और उनका उपयोग उसकी भलाई के लिए करना चाहिए। यह रचनात्मक अमानतदारी ऐच्छिक नहीं, अनिवार्य है। और यह अमानतदारी सम्पत्ति को रखने का कोई स्थायी अधिकार भी नहीं है। यह अल्पकालिक स्थिति है, जो हमें बड़े पैमाने पर सम्पत्ति के सहकारीकरण पर ले जाती है। वैयक्तिक स्वामित्व के अमानती स्वामित्व का रूप लेने में मुआवजे का कोई दावा भी पैदा नहीं होता। अमानती स्वामित्व किसी को उत्तराधिकार में नहीं मिलता है। मूल अमानतदार की मृत्यु के बाद या उसके हटाये जाने पर वह समाप्त हो जाता

है। अमानतदारों को मुनाफे का अधिकार नहीं होता है। कर्मचारियों की रजामंदी और राज्य की अनुमति से, वे अमानत के मामलों का प्रबंध करने का केवल पारिश्रमिक ले सकते हैं। इस पारिश्रमिक का कर्मचारियों के वेतन के साथ युक्ति-युक्त अनुपात होना चाहिए और वह उससे बहुत अधिक नहीं होना चाहिए। कर्मचारी अमानत की सम्पत्ति के प्रबंध में साझी बन जाते हैं। प्रबंधक, कर्मचारियों और समाज के प्रति उत्तरदारी होते हैं और उन्हें उनको हिसाब देना होता है। कर्मचारियों की श्रम-शक्ति, कुशलता और प्रतिभा का भी किसी के व्यक्तिगत अभ्युदय के लिए नहीं, बल्कि सारे समाज की भलाई के लिए उपयोग होता है।

अमानत का सिद्धांत पूंजीपतियों को समाप्त करने की या उन्हें कंगाल बनाने की बात नहीं सोचता है। वह उन्हें अपने अनुभव और अपनी प्रतिभा को सबकी भलाई के लिए प्रयुक्त करने का असली अवसर देता है। 'समाज के मतैक्य का प्रतिनिधित्व करने वाले' पंचायत राज्य को अमानत के सिद्धांत को अमल में लाने के लिए प्रशासकीय या कानून बनाने के कार्य की अनुमति है। अमानत के सिद्धांत के पीछे चरम शक्ति यह है कि जो लोग अपने अनन्य स्वामित्व से चिपटे रहते हैं, उनके साथ अहिंसात्मक असहयोग किया जा सकता है।

गांधीजी पूंजीवाद और साम्यवाद में से किसी को चुनने की पश्चिम की दुविधा को अच्छी तरह समझ गये थे। उत्पादन के आधुनिक साधन यदि व्यक्ति के हाथों में रहते हैं, तो उनसे धन-सम्पत्ति और सत्ता संकेन्द्रित हो जाती है, अमीर ज्यादा अमीर और गरीब ज्यादा गरीब होने लगते हैं। दूसरी ओर, यदि उत्पादन के साधन मुख्य रूप से राज्य के हाथों में चले जाते हैं तो नौकरशाही का हौआ अपना सिर उठाने लगता है। गांधीजी ने इसलिए विकेन्द्रित और मोटे तौर पर स्वायत्त आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की, जिसमें छोटी इकाइयां व्यक्तियों के हाथों में रहेंगी और बड़ी इकाइयां सहकारी समुदायों की मिल्कियत होंगी और उन्हीं के प्रबंध में चलेंगी।

फ्रांसीसी दार्शनिक ने कहा था कि सारी सम्पत्ति चोरी है। दूसरी ओर गांधीजी ने कहा कि सारी सम्पत्ति अमानत है। दोनों का आशय एक था। गांधीजी जब किसी से यह कहते थे कि उन्हें अमानतदारों की तरह काम करना चाहिए, तो उसमें भाव यह रहता था कि वे चोरों की तरह काम कर रहे हैं। इस तरह तो उन्हें यह नोटिस दे दिया जाता था कि वे अपनी सम्पत्ति या अधिकारों को छोड़ें और उनमें उन लोगों को अपना साझी बनायें, जिनका वे शोषण करते रहे हैं या जिन पर आधिपत्य जमाते आये हैं। गांधीजी अमानतदारों को अपने ढंग से सुधारने के लिए पूरा अवसर देते थे। परंतु यदि उनमें पश्चात्ताप का कोई लक्षण दिखायी नहीं देता था, तो उनके हृदय-परिवर्तन के लिए वे असहयोग और सत्याग्रह के हथियार निकालते थे। गांधीजी ने कहा था, ''यदि मालिकवर्ग अमानतदारी को स्वेच्छा से स्वीकार नहीं करता है, तो जनमत के दबाव से उसमें परिवर्तन आना चाहिए।'' शायद इसलिए जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि गांधीजी के परिवर्तन के तरीके विनम्र और विचारशील जबर्दस्ती से बहुत भिन्न नहीं थे।

ब्रिटिश अमानतदारों के साथ गांधीजी के व्यवहार के उदाहरण से यह चीज स्पष्ट हो जाती है। आरंभ में वे यह अपेक्षा रखते थे कि ब्रिटिश शासक भारतीय जनता के अमानतदारों की तरह बर्ताव करेंगे। जब रौलट एक्ट और जलियांवाला बाग के नरसंहार के बाद ब्रिटिश इरादों के बारे में उनका भ्रम पूरी तरह टूट गया तो वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ तब तक असहयोग की एक के बाद दूसरी लहर का नेतृत्व करते रहे, जब तक कि लार्ड माउंटबेटन वाइसराय की गद्दी से उतर कर गवर्नर जनरल नहीं बन गये, जब तक कि स्वामी को सेवक बनने के लिए 'राजी' नहीं कर लिया गया।

भारतीय नरेशों के साथ भी यही हुआ। गांधीजी ने उनसे 1916 में बनारस के एक तूफानी जलसे में अमानतदारों की तरह बर्ताव करने की प्रार्थना की थी। जब नरेश ब्रिटिश प्रभुत्व से हट जाने के बाद भी अपनी सम्पत्ति और सत्ता छोड़ने को तैयार नहीं लगे, तो गांधीजी ने सरदार पटेल को सलाह दी कि वे जनमत का दबाव डालें और नरेशों को भारतीय संघ में शामिल होने और उसके साथ एक हो जाने के लिए 'राजी' करें। उनमें से बहुतों को राज्य प्रमुख के रूप में अपने लोगों की सेवा करने का अवसर दिया गया। उनकी स्थिति में आये परिवर्तन की कठिनाइयों पर काबू पाने के लिए उन सबको 'प्रिवीपर्स' या एक तरह का वैयक्तिक कोष दिया गया। यहां यह बताना भी जरूरी है कि अलग-अलग तरह के नरेशों के लिए इस वैयक्तिक कोष की अलग-अलग मात्रा निर्धारित करने में सरदार पटेल की उदारता गांधीजी को अच्छी नहीं लगी थी।

नरेशों को अपना दायित्व पूरा करने के लिए शांत, प्रभावशाली और अपूर्व ढंग से राजी किया गया, उसका सबसे मुखर प्रमाण ख्रुश्चेव की एक टिप्पणी में मिलता है। यह उन्होंने 1956 की अपनी भारत-यात्रा में की थी : ''आप भारतीय भी विचित्र हैं। नरेशों को समाप्त किये बिना आप नरेशों की रियासतें किस तरह समाप्त कर सके?''

गांधीजी ने स्वाधीनता की भोर में ही लोगों की मनोवृत्ति भांप ली थी। इसलिए उन्होंने अमानतदारी के एक फार्मूले को स्वीकृति दे दी थी। उसमें कहा गया था :

1. अमानतदारी आज की पूंजीवादी समाज-व्यवस्था को सम-समाज-व्यवस्था में रूपांतरित करने का साधन प्रदान करती है। इसमें पूंजीवाद के लिए स्थान नहीं है, परंतु यह आज के मालिक वर्ग को सुधारने का अवसर देती है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि मानव स्वभाव ला-इलाज कदापि नहीं है।

2. यह सम्पत्ति पर वैयक्तिक स्वामित्व के किसी अधिकार को स्वीकार नहीं करती, सिवाय उस स्थिति के जब समाज ने स्वयं अपने कल्याण के लिए उसकी अनुमति दी हो।

3. स्वामित्व और धन-सम्पत्ति के उपयोग का कानून से नियंत्रण इसमें वर्जित नहीं है।

4. इस प्रकार राज्य-नियंत्रित अमानतदारी में व्यक्ति अपनी धन-सम्पत्ति को अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए या समाज के हितों के प्रतिकूल रखने या प्रयुक्त करने को स्वतंत्र नहीं होगा।

5. जैसे कि समुचित न्यूनतम निर्वाह-योग्य मजदूरी निश्चित करने का सुझाव रखा गया है, ठीक उसी तरह समाज में किसी व्यक्ति को हो सकने वाली अधिकतम आय की भी एक सीमा निश्चित होनी चाहिए। इस तरह की न्यूनतम और अधिकतम आय के बीच का अंतर युक्ति-युक्त, न्यायसंगत औरप समय के साथ इस तरह बदलने वाला होना चाहिए कि उसका रुझान अंतर की समाप्ति की ओर हो।

6. गांधीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्वरूप सामाजिक आवश्यकता द्वारा निर्धारित होगा, वैयक्तिक सनक या लोभ द्वारा नहीं।

गांधीजी ने यह फार्मूला श्री घनश्यामदास बिड़ला के द्वारा भारतीय पूंजीपतियों के पास स्वीकृति के लिए भेजा था। श्री बिड़ला अमानत के सिद्धांत को 1929 में स्वीकार तो कर चुके थे। परंतु जब गांधीजी असल मामले पर आये तो वह फार्मूला तहखाने में डाल दिया गया। श्री बिड़ला की ओर से फिर कोई सूचना नहीं मिली। गांधीजी इस मामले को आगे बढ़ाते, इससे पहले ही उनकी हत्या हो गयी।

गांधीजी ने श्री बिड़ला के द्वारा भारतीय पूंजीपतियों को अपने विशोषाधिकार छोड़ने का जो नोटिस दिया था, उसे अब बीस साल से अधिक हो गये हैं। उनमें हृदय परिवर्तन का कोई लक्षण दिखायी नहीं दिया है। इसके विपरीत वे विदेशी पूंजी की सहायता से लोगों का और गहरा शोषण करने के लिए, अपने को और भी सुविधाजनक मोर्चों पर मजबूती से जमा रहे हैं। इसलिए वह समय आ गया है जब अपने को गांधीवादी कहने वालों को इन दुराग्रही अमानतदारी को अपने दायित्व पूरा करने के लिए 'राजी' करने की बात सोचनी चाहिए।

अमानतदारी को अमल में लाने की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम ऐसा जन-आंदोलन है जो लोगों को अमानतदारी के दायित्वों की शिक्षा दे और बड़े-बड़े संस्थानों के सहकारीकरण की मांग के पीदे कर्मचारियों को संगठित करे। पुराने अनुभवी सर्वोदय नेता श्री शंकरराव देव ने इस दिशा में कुछ काम शुरू किया था। एक पत्रक में उन्होंने यह सुझाया था कि चाय बागान उद्योग अमानतदारी को अमल में लाने के गहरे परीक्षणों के लिए आदर्श क्षेत्र है। चाय बागानों के ब्रिटिश मालिक 100 साल से भी ऊपर 100 प्रतिशत से अधिक सालाना मुनाफा कमा चुके हैं। बागान जांच आयोग की 1956 की रिपोर्ट इस चीज को उजागर करती है कि किस तरह ब्रिटिश पूंजी ने, भारतीय पूंजीपतियों के साथ साझेदारी करके, भारत पर अपनी आर्थिक जकड़ कायम रखी है। गांधीजी के भारत का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह पुराने ब्रिटिश कामनवेल्थ को एक सच्चे कामनवेल्थ, सबका धन में बदले। विभिन्न ट्रेड यूनियन संगठनों को, अधिक मजदूरी के लिए नहीं, बल्कि जिन संस्थानों में वे काम करते हैं, उनके स्वामित्व के लिए आंदोलन करने का आह्वान देना चाहिए। यदि मालिक अमानतदार बनने से इनकार करते हैं, तो कर्मचारियों को अहिंसात्मक सत्याग्रह शुरू करना चाहिए और मालिकों के लिए शोषण जारी रखना असंभव कर देना चाहिए। गांधीजी ने मालिकों को सलाह दी थी कि ''उन्हें स्वेच्छा से कर्मचारियों को संस्थानों का, जिन्हें वे अपनी रचना मानते हैं, असली मालिक समझना चाहिए...उन्हें हड़तालियों को तुरंत संस्थान का पूरा नियंत्रण सौंप देना चाहिए, क्योंकि वह जितना उनका है, उतना ही हड़तालियों का है।''

यदि किसी विशेष उद्योग या संस्थान के प्रबुद्ध और संगठित कर्मचारी साझेदारी के दायित्वों को संभालने को तैयार हैं और यदि वे अमानतदार बनने से इनकार करने वाले अपने मालिकों के साथ अहिंसात्मक असहयोग कर रहे हैं, तो विद्यमान अधिनियमों के अधीन, सरकार को सार्वजनिक हित के लिए इस तरह के संकटग्रस्त संस्थानों का प्रबंध अपने हाथ में लेने का अधिकार है। और यदि इस प्रशासकीय कार्यवाही को करने वाली सरकार सभी दलों का प्रतिनिधित्व करती है, तो बाद में वैयक्तिक स्वामित्व से अमानती स्वामित्व में परिवर्तन, गांधीजी द्वारा निर्धारित अहिंसा के मानदंडों के अनुरूप होगा।

अमानत का सिद्धांत इस प्रकार एक शक्तिशाली मंत्र है जो गांधीवाद के कंकाल में प्राण फूंक सकता है। गांधीजी ने बहुमुखी रचनात्मक गतिविधियां शुरू की थीं। वे सब गांधीवाद के अंग-प्रत्यंग हैं, परंतु अमानत का सिद्धांत तो उसका जीवन-श्वास ही है। जाति-प्रथा को मिटाना, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण, पर्दे को खत्म करना, नारी-उद्धार, बुनियादी शिक्षा, अंग्रेजी हटाना, धर्मों या संप्रदायों में मेलजोल, राष्ट्रीय एकीकरण, शांति, भूदान और ग्रामदान—सभी अति मूल्यवान आंदोलन हैं। परंतु यदि उन्हें अमानत के सिद्धांत को अर्थव्यवस्था के शहरी क्षेत्र में अमल में लाने के कार्यक्रम से नहीं जोड़ा गया, तो वे व्यर्थ और निराशाजनक ही सिद्ध होंगे।

गांधीजी ने 1931 के करांची प्रस्ताव का आशय समझाते हुए कहा था कि समाज के सभी सेवकों की, वे चाहे वकील हों या व्यापारी, अधिकतम मासिक आय 500 रुपये होगी। ''आप यह न सोचें कि यह सुझाव केवल कागज पर लिखा रहने के लिए है। स्वराज्य जब प्राप्त हो जायेगा तो इसे लागू किया जायेगा। मैं बूढ़ा हूं और यदि मर भी जाता हूं, तो जवाहरलाल निश्चय ही इसे लागू करेगा।''

14-15 अगस्त, 1947 की अर्ध-रात्रि को जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, ''बहुत साल पहले हमने नियति से साक्षात्कार की प्रतिज्ञा की थी, और अब वह समय आ रहा है जब हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।'' स्वतंत्रता के 22 साल बाद भी वह प्रतिज्ञा वास्तविक अर्थ में अभी पूरी नहीं हुई है, क्योंकि हम धन की पागल दौड़ में फंस गये हैं, क्योंकि हम दुनियादारी की—नरसिंह के भय से पेड़ पर चढ़ जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। ❑

11 सितंबर : विनोबा जयंती / सत्याग्रह दिवस

बिहार के भूदानी किसानों पर आफत

❑ कुमार कृष्णन

बिहार सरकार के राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग से जारी इस परिपत्र से बिहार भूदान यज्ञ कमेटी हैरान है। भूदान कार्यकर्ता इस चिन्ता में डूबे हैं कि आखिर सरकार ने इस परिपत्र को साठ साल बाद क्यों जारी किया? अगर करना ही था तो जमींदारी उन्मूलन के तत्काल बाद क्यों नहीं किया? क्या पूर्व भूपतियों ने एक चाल चली है कि भू-विहिन लोगों के विरुद्ध? उस सयम परिपत्र पर अमल करना आसान भी होता, अब तो इससे अराजकता ही फैलेगी। भूदान कार्यकर्ता भूदान किसानों की जमीन उनके हक में सुनिश्चित करने के लिए किसी ऐसे अकाट्य तर्क की तलाश में जुट गये हैं, ताकि अदालत में सरकारी परिपत्र रद्द करवा सकें। अगर इस प्रयास में भूदान कार्यकर्ता नाकाम होते हैं तो भूदान किसानों के पास करो या मरो आंदोलन के सिवाय कोई चारा नहीं होगा। –संपा.

बिहार सरकार के एक फरमान से गांधीजी के सच्चे उत्तराधिकारी विनोबा भावे के भूदान किसान संकट में घिर गये हैं। ऐसा कर सरकार ने यह साबित करने की कोशिश की है कि गांधीजी के आम आदमी से उसका कोई मतलब नहीं है, खासकर उन भूदानी किसानों से तो एकदम नहीं, जिनके लिए विनोबा भावे बिहार में वर्षों रहकर दान में जमीन मांगते रहे। सरकार के राजस्व विभाग द्वारा जारी एक परिपत्र के मुताबिक, नीतीश सरकार ने उन जमीनों को अपनी बताकर विनोबा के समय से बसे भूदान किसानों को बेदखल करने की तैयारी शुरू कर दी है। भूदान किसान बिहार भूदान यज्ञ कमेटी के पर्चे के आधार पर प्रदत्त जमीन पर बसे थे। अब जबकि उनकी अगली पीढ़ियां भी आ गयी हैं, ऐसे में साठ साल बाद उन्हें भूदान की जमीन से उजाड़कर गांधी, विनोबा और जयप्रकाश का माला जपने वाली सरकार क्या मकसद हासिल करना चाहती है?

बिहार सरकार के राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग से जारी इस परिपत्र से बिहार भूदान यज्ञ कमेटी हैरान है। भूदान कार्यकत्र इस चिन्ता में डूबे हैं कि आखिर सरकार ने इस परिपत्र को साठ साल के बाद क्यों जारी किया? अगर करना ही था तो जमींदारी उन्मूलन के तत्काल बाद क्यों नहीं किया? उस समय परिपत्र पर अमल करना आसान भी होता, अब तो इससे अराजकता ही फैलेगी। भूदान कार्यकर्ता भूदान किसानों की जमीन उनके हक में सुनिश्चित करने के लिए किसी ऐसे अकाट्य तर्क की तलाश में जुट गये हैं, ताकि अदालत में सरकारी परिपत्र रद्द करवा सकें। अगर इस प्रयास में भूदान कार्यकर्ता नाकाम होते हैं तो भूदान किसानों के पास करो या मरो आंदोलन के सिवाय कोई चारा नहीं होगा। भूदान किसान इस परिपत्र को विनोबा जैसे संत की आत्मा पर कुठाराघात बता रहे हैं। वे इससे इतने कुपित हैं कि वे मौजूदा सरकार और उनके अमले को बात-बात में जमकर कोसते हैं। वे उदाहरण देते हैं कि अतीत में जिस नेता ने भूदान किसानों के विरुद्ध कदम उठाने की कोशिश की, वह दुर्दिनों में ऐसा घिरा कि चाहकर भी चुनाव नहीं लड़ सका। कुछ ऐसा ही हाल इस परिपत्र को जारी करने वाले सरकार से जुड़े नेताओं का भी होगा। भूदान किसान भूदान प्राप्ति और वितरण की प्रक्रिया को एक यज्ञ की तरह देखते हैं और इसके विरुद्ध कदम उठाने वाले अफसरों के खिलाफ आवाज उठाते हैं।

परिपत्र की बात भूदान किसानों के बीच आग की तरह फैल चुकी है। भूदान किसान असमंजस में हैं, आखिर वे करें तो क्या करें। उनकी तो कहीं सुनवाई नहीं होती। अफसर और उनके कारिन्दे भी नहीं सुनते। वे तो उन्हीं दबंग भ्रष्टाचारियों के पक्ष में खड़े रहते हैं, जो उन्हें बेदखल करने का षड्यंत्र करते रहते हैं। हम भले विनोबा को मानें या न मानें, पर भूदान किसान उनको अपना उद्धारक मानते हैं। इन भूदान किसानों के हित में विनोबा ने जीते जी भूदान यज्ञ अधिनियम को खूब सोच विचारकर इतना सशक्त बनाया कि उसे देश का कोई कानून चुनौती नहीं दे सके। अब अगर इतना सशक्त अधिनियम सरकार के एक परिपत्र के आगे हार जाता है, तो इससे न सिर्फ भूदान किसान उजड़ेंगे, बल्कि गांधी, विनोबा और जयप्रकाश की विरासत और उनके योगदानों पर भी आंच आयेगी। दुनिया भर में प्रसिद्ध मानवीय आधार पर अवतरित एक स्वयंस्फूर्त अहिंसक क्रांति की स्मृतियों, प्रतिमानों और उसके कारण बने-संवरे भूदान किसानों के छोटे-छोटे संसार भी तबाह हो जायेंगे। भूदान किसानों को एक उम्मीद उनके लिए जीवनदान देने वाले लोकनायक जयप्रकाश आंदोलन के योद्धाओं से थी, लेकिन न जाने किस कारण वे भी चुप्पी साधे हुए हैं।

परिपत्र बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम 1954 की धारा 12 के प्रावधानों के

अनुकूल नहीं है। अधिनियम की धारा 12 में स्पष्ट है कि यदि किसी सत्वधारी में जिसका स्टेट या भूमि सुधार अधिनियम 1950 के अधीन राज्य में निहित हो चुकी हो। इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले लिखित से घोषणा की हो ऐसे स्टेट या भूधृति में समाविष्ट किसी भूमि को उसने आचार्य विनोबा भावे को दान कर दिया है और राज्य सरकार से यह लिखित प्रतिज्ञा की हो कि इस अधिनियम के अधीन ऐसी भूमि के संबंध में भुगतानी मुआवजा छोड़ देगा तो राज्य सरकार ऐसी भूमि को भूदान यज्ञ के प्रयोजनार्थ भूदान यज्ञ समिति को हस्तांतरित कर देगी। वह भूमि भूदान यज्ञ समिति में निहित हो जायेगी। इसके बावजूद परिपत्र के मुताबिक, जमींदारी उन्मूलन के बाद यदि भूतपूर्व जमींदारों द्वारा गैरमजरूआ खास जमीन बिहार भूदान यज्ञ समिति अथवा विनोबा भावे को दान स्वरूप दिया गया है, तो ऐसे दानपत्रों की वैधानिक मान्यता नहीं होगी, क्योंकि जमींदारी उन्मूलन के बाद गैरमजरूआ खास जमीन सरकार में निहित हो चुकी है। परिपत्र को प्रभावी किया जायेगा तो करीब चार लाख भूदान किसानों को भूदान यज्ञ समिति द्वारा प्रदत्त जमीन से बेदखल होना होगा। भूदान से प्राप्त कुल भूमि 6,48,593.14 एकड़ में से 3,46,494.95 एकड़ भूमि संपुष्ट की गयी है। अभी तक 2,56,392.39 एकड़ भूमि वितरित की जा चुकी है। वितरण के योग्य बची हुई 5,990.03 एकड़ भूमि के वितरण का काम भूदान यज्ञ कमेटी द्वारा किया ही जा रहा था कि अब उसके रास्ते यह परिपत्र अड़चन बन गया है। सरकार वितरण के काम को सुनिश्चित करने के बजाय अब परिपत्र को बाकायदा क्रियान्वित करने में जुट गयी है। इससे काफी संख्या में भूदान किसान प्रभावित हो रहे हैं। इन किसानों को भूदान यज्ञ कमेटी में वैध तरीके से निहित गैर मजरूआ खास जमीन दी गयी थी। अगर सरकार जमींदारी उन्मूलन के तुरंत बाद गैर मजरूआ खास जमीन को भूदान में निहित नहीं करती तो आज यह नौबत नहीं आती। अधिकारी परिपत्र के आधार पर अलग-अलग जिलों में भूदान किसानों को नोटिस भी भेज रहे हैं। हालांकि भूमि वितरण का काम बिहार और झारखंड में एक साथ हुआ। वहां भी सरकार द्वारा संपुष्ट गैरमजरूआ खास जमीन भूमिहीनों को दी गयी, लेकिन वहां की सरकार भूदान किसानों पर इस तरह के परिपत्र लाकर परेशान नहीं कर रही है।

परिपत्र को लेकर बिहार भूदान यज्ञ कमेटी के अध्यक्ष कुमार शुभमूर्ति का कहना है कि परिपत्र सरकार की भूमि सुधार नीति के अनुकूल नहीं है और न ही विधिसम्मत है। सरकार ने एक परिपत्र जारी कर कहा है कि जमींदारों ने जो गैरमजरूआ खास जमीन दान में दिया था, वह दान अवैध है। राजस्व और भूमि सुधार विभाग का कहना है कि दान अवैध इसलिए है कि गैरमजरूआ खास जमीन जमींदारों की नहीं थी। राज्य की सभी गैरमजरूआ खास जमीन जमींदारी उन्मूलन होते ही सरकार की हो गयी थी। शुभमूर्ति सवाल करते हैं कि 1950 में जमींदारी उन्मूलन के बाद जब ये जमीन सरकार की हो गयी तो 1954, 1955, 1956 के वर्षों में जमींदारों ने ये जमीन कैसे दान में दे दी। अगर यह सर्कुलर 1960 तक निकल जाता तब भी यह बात मानने लायक होती। लेकिन सरकार को खुद उस समय ध्यान नहीं था। सरकार ने अपनी ही जमीन को संपुष्ट करके भूदान के खाते में निहित कर दी। ऐसे में अब यह सर्कुलर जारी करना सरासर गलत है।

उन्होंने कहा कि अब तक तीन लाख से अधिक भूमिहीनों को भूदान की ओर से जमीन दी गयी है। इसमें करीब डेढ़ लाख भूमिहीनों को जो जमीन दी गयी, वह गैर मजरूआ खास जमीन ही है। इन डेढ़ लाख भूमिहीनों को बाकायदा कानूनी तरीके से प्रमाण पत्र देकर बसाया गया, उसे अब सरकार कैसे बेदखल कर सकती है? फिर उनका कैसे बंदोबस्त करेंगे? इस सर्कुलर के जारी होने से ऐसे भूदानी किसान चिन्ता में डूब गये हैं और इस आशंका से त्रस्त हैं कि अब अधिकारी आयेंगे और उन्हें तरह-तरह की नोटिस देंगे। फिर उन्हें भूदान की जमीन से खदेड़ देंगे। सर्कुलर से भारी अराजकता फैल रही है, सरकार इसे वापस ले। अगर भूदानी जमीन के वितरण के शुरुआती दौर में ही सरकार ऐसे परिपत्र जारी करती तो उस समय उनकी मंशा आसानी से पूरी हो जाती, लेकिन आज इस सर्कुलर के प्रभावी होने से मामला बिगड़ सकता है। यह परिपत्र राज्य के सभी प्रमंडलीय आयुक्तों और जिला पदाधिकारियों को प्रेषित किया गया है। इस बारे में राजस्व और भूमि सुधार विभाग के प्रधान सचिव को लिखे एक पत्र में शुभमूर्ति ने कहा है कि उक्त परिपत्र के निर्गत होने के वजह से लाखों भूदान किसान प्रभावित हो रहे हैं। जो भूदान किसान वर्षों से भूदान की जमीन पर बसे हैं या जोत आबाद कर जीविकोपार्जन कर रहे हैं और रसीद कटाते आ रहे हैं, उनका रसीद अब राजस्व कर्मचारियों द्वारा नहीं काटा जा रहा है। नये भूदान किसानों का भी रसीद उक्त परिपत्र के आधार पर काटा जाना बंद कर दिया गया है, जिससे काफी संख्या में दलित गरीब भूमिहीन भूदान किसान अपनी भूमि के दाखिल-खारिज के लिए भटक रहे हैं और बड़ी संख्या में भूदान किसान बेदखल हो रहे हैं। इस परिपत्र की वजह से भूमि सुधार उपसमाहर्ता न्यायालय में सैकड़ों एकड़ भूमि से संबंधित दाखिल दानपत्रों की संपुष्टि नहीं की जा रही है या फिर उन दानपत्रों को खारिज किया जा रहा है, जिसकी वजह से भूमि वितरण कार्य प्रभावित हो रहा है और राज्य के माहौल बुरी तरह से बिगड़ रहा है। ❑

सामयिकी

क्या भारत एक असुरक्षित राष्ट्र बनना चाहता है!

❑ संतोष भारतीय

असम सहित उत्तर पूर्व के सातों राज्य इस समय एक बड़े आंदोलन के दरवाजे पर खड़े हैं। स्वयं असम के मुख्यमंत्री सोनोवाल भी आंदोलनकारियों के साथ खड़े नजर आ रहे हैं। आंदोलन केन्द्र सरकार के एक फैसले को लेकर हो रहा है, जिसकी वजह से 1955 का नेशनल सिटीजनशिप एक्ट बदला जाने वाला है।

1971 में असम आंदोलन के नाम से मशहूर छात्र आंदोलन जब अपने चरम पर था, तब तत्कालीन प्रधानमंत्री ने असम के छात्रों के साथ एक समझौता किया। इस समझौते का लब्बोलुआब था कि 1971 तक जो लोग असम में या उत्तर पूर्व में आ चुके हैं, उन्हें भारत का नागरिक मान लिया जायेगा। उसके बाद जो भी भारत में आया है, वो भारत का नागरिक नहीं माना जायेगा। इस समझौते के परिणामस्वरूप आंदोलन शांत हुआ और असम में प्रफुल्ल महंता की सरकार बनी। असम के मौजूदा मुख्यमंत्री उस आंदोलन के सक्रिय नेता थे और वे असम के लोगों के प्रति वचनबद्ध हैं कि यह कानून न बदला जाये। वैसे प्रफुल्ल कुमार महंता भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार में हिस्सा ले रहे हैं और उनकी पार्टी के दो विधायक, मंत्री भी हैं। वे इस समय असम में चारों तर घूमकर जनजागरण अभियान चला रहे हैं।

केन्द्र सरकार ने संभवतः 2019 के चुनाव के लिए एक नया मुद्दा खड़ा करना शुरू कर दिया है। केन्द्र सरकार 1971 की जगह 2014 को कट ऑफ डेट बनाना चाहती है और चाहती है कि जितने भी हिन्दू बांग्लादेश, अफगानिस्तान और पाकिस्तान में हैं, वो भारत आ जायें। सिर्फ बांग्लादेश से आने वालों की संख्या दो करोड़ के आसपास आंकी जा रही है। पहली बार धर्म के आधार पर पड़ोसी देशों से नागरिकों को आमंत्रित करना क्या बताता है? क्या भारत की स्थिति इस लायक है कि हम दो करोड़ लोगों को अपने देश में समाहित कर सकें। उनके खाने-पीने का इंतजाम कर सकें और उन्हें नौकरियां दे सकें, उन्हें स्थान दे सकें।

हम तो हमारे देश के लोगों को नौकरियां नहीं दे पा रहे हैं। वर्तमान की पूरी जनसंख्या शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, संचार, रोजगार और महंगाई से जुड़ी समस्याओं से त्रस्त है और सरकार से मांग कर रही है कि वो इन समस्याओं से देश को छुटकारा दिलाये। सारे वादों के बावजूद, हम अपने देश के सिर्फ 70 या 75 लाख लोगों के लिए आधी-अधूरी नौकरियों का इंतजाम कर पाये हैं। अब अगर ये दो करोड़ लोग हमारे देश में असम के रास्ते, नॉर्थ ईस्ट में या सारे देश में आ जाते हैं, तो हम इन्हें कैसे जीने लायक सुविधाएं दे पायेंगे। यह किसी की समझ में नहीं आता। इसीलिए पूरा असम और उत्तर पूर्व आंदोलन के दरवाजे पर खड़ा है।

भारत में सरकार चलाने वाले शायद एक ऐसी जगह खड़े हैं, जहां उन्होंने सारे देश के लोगों के मन में सांप्रदायिक बंटवारे का खतरनाक पहलू यह है कि किसी को भी अपने घर की भूख, अपने घर की बेरोजगारी, अपने घर की अस्वास्थ्यकारी स्थितियां दिखायी नहीं देतीं। उन्हें लगता है कि ये वो तकलीफें हैं, जो हमें सहनी पड़ेंगी, अगर इस देश में बहुसंख्यकों का राज्य लाना है तो शायद इसीलिए जिस समस्या से उत्तर पूर्व के सारे राज्य और वहां के सारे हिन्दू परेशान हैं और आंदोलन कर रहे हैं, उस आंदोलन के बारे में एक लाइन न तो दिल्ली के अखबारों में या दूसरे राज्यों के अखबारों में छप रहा है और न ही टेलीविजन पर दिखाई दे रहा है। यह बहस का विषय भी नहीं है, क्योंकि यदि इस विषय पर बहस होती, तो यह बात सारे देश में जाती। लेकिन केन्द्र सरकार ने बहुत ही होशियारी से उसी तरह इस समस्या को एक स्थानीय समस्या में परिवर्तित कर दिया। जैसे उन्होंने देश की सारी समस्याओं को स्थानीय समस्याओं में बदल दिया है।

दूसरी तरफ, केन्द्र सरकार अपनी इस जिम्मेदारी को नहीं समझ रही है कि देश के नागरिकों में खुद को लेकर असुरक्षा महसूस होती है और अगर वे इसे व्यक्त करते हैं, तो बजाय उनकी समस्या सुनने के, उन्हें धमकाने का सिलसिला प्रारंभ कर दिया जाता है। सबसे बड़ा अल्पसंख्य समुदाय मुसलमान है। वे अपनी असुरक्षा को लेकर परेशान थे ही और वे अक्सर इस परेशानी को व्यक्त भी करते रहते हैं। लेकिन अब दूसरी बड़ी अल्पसंख्यक जमात, ईसाई भी परेशान हो गये हैं। उन्होंने अपनी परेशानी व्यक्त की नहीं कि उनके खिलाफ सत्तारूढ़ पार्टी का हमला शुरू हो गया। श्री सुब्रमण्यम स्वामी जैसा समझदार व्यक्ति भी बयान दे रहा है कि हमें वेटिकन सिटी से संबंध तोड़ देना चाहिए, क्योंकि जिन लोगों ने ऐसा बयान दिया है, उनका रिश्ता वेटिकन से है। कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि अगर नशा धर्म का

हो तो अफीक के नशे से भी खतरनाक होता है। कार्ल मार्क्स की 200वीं जयंती चल रही है। कार्ल मार्क्स ने दुनिया के बड़े समुदाय पर प्रभाव डाला था और अब उसका असर या उनके कथन को सुब्रमण्यम स्वामी जैसे समझदार लोग सत्य साबित कर रहे हैं। क्या यह सरकार का कर्तव्य नहीं है कि कोई भी अगर डर का अनुभव करता है, असुरक्षा महसूस करता है, तो उसके डर और असुरक्षा को दूर किया जाय? इसकी जगह जिसे डर या असुरक्षा महसूस होती है उसे और डराना, उसे और असुरक्षित महसूस कराना, क्या यह सभ्य सरकार का काम है? अभी तो ऐसा ही लग रहा है।

भारत सरकार इसी नीति पर चल रही है कि देश के हिन्दुओं के सामने अपने हिन्दू होने का दावा पेश करे और सिर्फ हिन्दू होने के नाते 2019 का वोट मांगने की रणनीति बनाये। भारतीय जनता पार्टी की सरकार इस सिद्धांत को शायद नहीं मानती कि वो सारे देश की सरकार है। इसलिए वो हर दो हफ्ते के भीतर एक नया विषय छेड़ देती है, जिसका रिश्ता न बेरोजगारी से होता है, न महंगाई से होता है, न शिक्षा से होता है, न स्वास्थ्य से होता है, न भ्रष्टाचार से होता है। उसका रिश्ता ऐसी बहस से होता है जो हिन्दू-मुसलमान, हिन्दू-क्रिश्चियन जैसे मुद्दों पर जाकर रुक जाता है। तो क्या हम मानें कि सरकार अपनी जिम्मेदारी से दूर भाग रही है। अगर मुसलमानों और क्रिश्चियन के बाद बौद्ध भी इसमें शामिल हो गये, जैनी भी शामिल हो गये, सिख भी शामिल हो गये तो क्या वो स्थिति अच्छी होगी? सरकार यह नहीं समझ रही है कि देश का कोई वर्ग जब असंतुष्ट या असुरक्षित महसूस करता है, तो वो सारी दुनिया के लिए खबर होती है। हमारे देश के नेता, विशेषकर प्रधानमंत्री जी, दुनिया में घूम-घूम कर भारत के महाशक्ति होने की दुहाई देते हैं, लेकिन वो यह भूल जाते हैं कि दुनिया के बहुत सारे देशों में हमें लेकर मजाक का माहौल बन जाता है। भारत एक असुरक्षित राष्ट्र है, इसका औपचारिक प्रस्ताव भर अमेरिका राष्ट्र है, इसका औपचारिक प्रस्ताव भर अमेरिका से आना बाकी है। जैसे पाकिस्तान के लिए कहा जाता है कि वह एक असुरक्षित देश है। क्या हम भी पाकिस्तान के बराबर खड़े दिखायी देंगे?

ऐसा लगता नहीं है कि सरकार ऐसा चाहती होगी। लेकिन सरकार का कदम न उठाना, सरकार का खामोश रहना और विभिन्न वर्गों में बढ़ती हुई असुरक्षा की भावना को दूर न करना देश की अंतर्राष्ट्रीय छवि के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बन गया है। इसलिए अपेक्षा करनी चाहिए कि यह जो सामाजिक अंतरविरोध हैं, सामाजिक असुरक्षा की बढ़ती तीव्र भावना है, चाहे वो कितना भी छोटा वर्ग हो, बिना इसका ध्यान रखे सरकार इन वर्गों की तकलीफों को न केवल दूर करेगी, बल्कि उन्हें साहस भी बंधायेगी की सरकार नाम की कोई चीज है ओर वो उनके साथ खड़ी है। ❑

'सर्वोदय जगत'
के सुधी पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की वेबसाइट
sssprakashan.com
पर उपलब्ध है। इस सुविधा का लाभ पाठकगण उठा सकते हैं। –सं.

निजता का अधिकार : मानवीय गरिमा का अभिन्न अंग है

❑ **रवीश कुमार**

सरकार कहती रही कि निजता का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है, सामान्य कानून का मामला है, लेकिन संविधान पीठ ने सरकार की इस दलील को खारिज कर दिया, 1973 में एक फिल्म आयी थी, 'यादों की बारात'। इसका एक गाना आज भी सुना जाता है, 'आप के कमरे में कोई रहता है, तरतरारा हम नहीं कहते जमाना कहता है।' लिखने और गाने वाले को पता है कि किसी के कमरे में कौन रहता है, झांकना या किसी को बताना ठीक नहीं है। हम देखेंगे कि सुप्रीम कोर्ट की 9 जजों की खंडपीठ ने जो फैसला दिया है, उसके सहारे में हम गंवा चुके निजता को हासिल कर सकते हैं या नहीं। सरकार कहती रही कि निजता का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है, सामान्य कानून का मामला है, लेकिन संविधान पीठ ने सरकार की इस दलील को खारिज कर दिया।

निजता का अधिकार वो अधिकार है, जिसकी खुशबू संविधान में है। जज साहिबान ने बताया है कि संविधान के बगीचे में अलग-अलग अधिकारों से जो खुशबू आ रही है, वो निजता के अधिकार की खुशबू आ रही है, इस खुशबू के बगैर संविधान की बगिया की रौनक फीकी पड़ जाती है। आज के फैसले में बस यही हुआ है कि उस खुशबू का नाम दे दिया गया है कि यह जासमीन नहीं, गुलाब नहीं, ख़स नहीं बल्कि निजता का अधिकार है। यह लड़ाई आपके लिए जिन लोगों ने लड़ी पहले उनका शुक्रिया अदा करते हैं।

90 साल की उम्र में निजता के अधिकार मामले के पहले याचिकाकर्ता रिटायर्ड जस्टिर केएस पुत्तास्वामी का शुक्रिया। उनके साथ कई वकीलों ने भी इस केस में अपनी दलील रखी है। मशहूर वकील श्याम दीवान, अरविन्द दातार, जी. सुब्रमणियम, युवा वकील गौतम भाटिया, कृतिका भारद्वाज, प्रसन्ना एस, अपार गुप्ता का भी शुक्रिया। इन लोगों ने लड़ाई अदालत के अलावा मीडिया ओर समाज के स्पेस में भी लड़ी, ताकि लोगों को समझ आये कि प्राइवेसी, निजता का मामला खाते-पीते घरों का मामला नहीं है, बल्कि यह अधिकार चला गया तो कमजोर आदमी ज्यादा आसानी से मारा जायेगा। सरकारें उसे चबा जायेंगी। आपको लगता है कि चबा जाना थोड़ा ज्यादा कह दिया, तो अगली पंक्ति का इंतजार कीजिए।

पूर्व अर्टानी जनरल हैं, मुकुल रोहतगी। संविधान पीठ के सामने उन्होंने सरकार का पक्ष नहीं रखा, क्योंकि तब तक पद छोड़ चुके थे। उन्होंने जस्टिस एके सिकरी और अशोक भूषण की बेंच के सामने आधार मामले में जो कहा उसे याद रखना जरूरी है। मुकुल रोहतगी की राय भी सरकार की ही राय मानी जायेगी और अलग संदर्भ में कहे जाने के बाद भी इस संदर्भ में उसका जिक्र जरूरी है। मुकुल रोहतगी अब अटॉर्नी जनरल नहीं हैं, लेकिन तब उन्होंने कहा था कि नागरिकों का उनके शरीर पर संपूर्ण अधिकार नहीं है। प्राइवेसी का तर्क बोगस है।

आपके शरीर पर आपका अधिकार नहीं है तो किसका है? क्या सरकारों को यह हक है कि आपके शरीर का कोई अंग निकाल ले, आंख या किडनी निकाल ले, यह कहते हुए कि आपका शरीर आपका नहीं, सरकार का है। इस आलोक में देखें तो इस फैसले ने ऐसी सोच से सबको बचा लिया है। दुनिया और देश में भ्रष्टाचार है, इसे दूर करने के नाम पर जीने और निजता के अधिकार से खिलवाड़ नहीं हो सकता। सब्सिडी से ज्यादा भारतीय राजनीति और चुनाव को कालेधन से मुक्त करने की जरूरत है, जहां आज भी बीजेपी सहित सभी राजनीतिक दल बगैर पैन नंबर और देने वाले का पता पूछे पैसा ले लेते हैं।

एडीआर कि रिपोर्ट से साफ होता है— राष्ट्रीय दलों को 384 करोड़ रुपये चंदा मिला है, जिसका पैन नंबर नहीं है।

355 करोड़ का चंदा देने वालों का पता तक नहीं है।

संविधानपीठ के फैसले को बार-बार पढ़ा जाना चाहिए। इससे एक नागरिक के रूप में आपके प्राइवेट स्पेस की समझ बेहतर होती है, निजी चुनाव की समझ बेहतर होती है। इससे ये समझने में ताकत मिलेगी कि आपका चुनाव आपका है, किसी और का नहीं। जज साहिबान ने कहा—

ठीक है कि आर्टिकल 21 और 19 में निजता के अधिकार का उल्लेख नहीं है।

यह कहना कि भारत का संविधान निजता का अधिकार सुनिश्चित नहीं करता है, सही नहीं है।

जीने के अधिकार में भी निजता का अधिकार शामिल है।

जीने के अधिकार और निजी स्वतंत्रता को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है।

व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता की चाह, समानता, ये सब भारतीय संविधान के आधारभूत स्तंभ हैं।

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता संविधान की रचना नहीं है, बल्कि संविधान इन्हें मान्यता देता है।

प्राइवेसी का अधिकार, जीने और निजी स्वतंत्रता के अधिकार से निकलता है।

मौलिक अधिकारों के विभिन्न तत्त्वों से भी निजता का अधिकार निकलता है।

प्राइवेसी का सवाल सिर्फ आधार नंबर के संदर्भ में नहीं है। इस संदर्भ में भी है कि एक धर्म की लड़की जब दूसरे धर्म के लड़के से शादी करेगी, तो सरकार की एजेंसियां जांच नहीं करेंगी। समलैंगिकों के सवाल को यह अधिकार मजबूती देगा। यह सवाल को यह अधिकार मजबूती देगां यह सवाल वहां भी आता है कि क्या कोई सरकारी एजेंसी आपका फोन रिकॉर्ड कर सकती है। अदालत की संविधान पीठ ने कहा कि वे यहां उन सभी की सूची नहीं तैयार कर रहे हैं कि निजता क्या-क्या है। इसके बाद भी प्राइवेसी का जो दायरा बताया गया है, वो काफी महत्त्वपूर्ण है।

संविधान पीठ ने कहा है कि सेक्सुअल संबंध, व्यक्तिगत संबंध, पारिवारिक जीवन की मान्यता, शादी करना, बच्चे पैदा करना यह सब निजता के अधिकार हैं। प्राइवेसी का अधिकार वो है, जो व्यक्तिगत स्वायत्ता का बचाव करता है। यह अधिकार मान्यता देता है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन के वाइटल पहलुओं को कैसे नियंत्रित करता है। व्यक्तिगत चयन भी प्राइवेसी का हिस्सा है। प्राइवेसी हमारी संस्कृति की विविधता, बहुलता को भी संरक्षण देती है। कोई व्यक्ति पब्लिक प्लेस में है, इस वजह से उसकी प्राइवेसी खत्म नहीं हो जाती है। इंसान की गरिमा का अभिन्न अंग है प्राइवेसी।

कोर्ट ने कहा कि संविधान के मायने, इसके बनने के दौर के संदर्भ में बंद नहीं किये जा सकते हैं। बदलते वक्त की

लोकतांत्रिक चुनौतियों के अनुसार इसकी ठोस व्याख्या होती रहनी चाहिए। निजता का अधिकार मौलिक अधिकार है। केके वेणुगोपाल, भारत सरकार के अटॉर्नी जनरल ने संविधान पीठ के सामने कहा था कि राज्य कल्याणकारी योजनाओं के तहत जो हक देता है, उसके हित में निजता का अधिकार छोड़ा जा सकता है।

हमारा मत है कि निजता का अधिकार अमीरों की कल्पना है, जो बहुसंख्यक जनता की आकांक्षाओं और जरूरतों से काफी अलग है। अदालत मानती है कि इस दलील में दम नहीं है। यह दलील संविधान की समझ के साथ धोखा है। हमारा संविधान एक व्यक्ति को सबसे आगे रखता है। यह कहना सही नहीं है कि गरीब को सिर्फ आर्थिक उन्नति चाहिए, नागरिक और राजनीतिक अधिकार नहीं।

संविधान पीठ ने सरकार के कार्यों की समीक्षा, सवाल करने, उससे असहमत होने के अधिकार को भी संरक्षण दिया है। अदालत का कहना है कि यह सब लोकतंत्र में नागरिकों को सक्षम बनाता है, इससे वे राजनीतिक चुनाव बेहतर करते हैं। एक जगह तो सरकार के कटु आलोचक प्रोफेसर अमर्त्य सेन का भी जिक्र आया है, जिसे देखकर सरकार के मशहूर वकीलों को अच्छा नहीं लगेगा। अदालत ने बड़े विस्तार से समझाया कि सामाजिक आर्थिक तरक्की का नागरिक राजनीतिक अधिकारों से कोई झगड़ा नहीं है। इसी संदर्भ में संविधान पीठ के फैसले में एक जगह जिक्र आता है कि इनमें से कुछ चिन्ताओं की झलक नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन के लेखों में भी मिलती है। सेन ने अकाल के समय में गैर लोकतांत्रिक सरकारों और लोकतांत्रिक सरकारों की हरकतों की तुलना की है। उनका विश्लेषण बताता है कि निरंकुश राज्य में सरकार के नेताओं को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होता है, जिसके कारण अकाल जैसी स्थिति में जनता को राहत नहीं मिल पाती है। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' पद-यात्रा

❑ **गिरिराज किशोर**

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

जब पहले हरिलाल छह महीने के लिए फीनिक्स में था तो उसे पता चला बापू के दोस्त डॉ. पी. जे. मेहता के द्वारा दिये गये वजीफे पर छगनलाल लंदन जा रहा है। जब मोहनदास लंदन पढ़ने गये थे तो डॉ. मेहता ही एक तरह से मार्गदर्शक थे। तब वे लंदन ही रहते थे। बल्कि आरंभ में कुछ दिन उनके होटल में साथ ही रहे थे। जब मोहनदास ने गरीबी का व्रत लिया था तो डॉ. मेहता ने यह सोचकर वजीफा दिया था कि उनका एक बेटा लंदन जाकर पढ़ सकेगा। लेकिन बापू ने यह सोचकर कि लोग यह न कहें कि अपने बेटे का पक्षपात किया है, छगनलाल को अवसर देना ठीक समझा। हरिलाल को बापू के इस निर्णय से बहुत धक्का लगा। हरिलाल ने अपने इस दुःख को बा और पत्नी के अलावा किसी पर प्रकट नहीं होने दिया। वह चुपचाप अपनी गिरफ्तारी देने के लिए जोहान्सबर्ग चला गया। कस्तूर के लिए भी यह एक झटका था। पर वह असहाय थी। छगनलाल भी निकट संबंधी था। वह इस बात से आहत थी उसका बड़ा बेटा अपने दुःख को कम करने जेल गया है।

दूसरी घटना ने उसे झकझोर दिया था। हरिलाल की पत्नी गुलाब उसके जेल में रहते ही, अपनी बेटी रामी के साथ, अपने दूसरे बच्चे को जन्म देने के लिए, भारत चली गयी थी। जेल से छूटने के बाद हरिलाल फीनिक्स जाने के बजाय, भारत जाने की इजाजत और पैसे मांगने सीधा बापू के पास पहुंचा। बापू ने पैसा न होने की बात कहकर भारत जाने से मना कर दिया और दक्षिण अफ्रीका में रहने को कहा। गुलाब जब फीनिक्स में थी तो जेल में रहते उसे बराबर लगता था कि वह अपनी पत्नी और बेटी रामी से कभी जाकर मिल सकता है। लेकिन बापू के इनकार ने पत्नी और बेटी से मिलने की संभावना एक झटके में खत्म कर दी थी। हरिलाल ने टाल्सटाय

फार्म न जाकर, निराशा और गुस्से में, फिर अपनी गिरफ्तारी दे दी। कस्तूर इस उम्मीद में थी कि हरि आएगा तो वह उसे समझायेगी। हालांकि वह यह भी समझती थी कि गुलाब और रामी का न होना उसे कितना बुरा लगेगा। सबसे ज्यादा चिन्ता उसे इस बात की थी, कहीं वह अपने बापू के निर्णय को उनका मनमानापन और भावनाहीनता न समझ बैठे। हरिलाल अब सिर्फ नाराज ही नहीं था बल्कि उनके उद्देश्य के विरुद्ध भी हो गया था। घर नहीं तो बाहर क्या? बा को विश्वास था कि जब वह लौटेगा तो वह उसके मन के भार को कम कर सकेगी। सब काम वह स्वयं करती और देखती थी। लेकिन हरिलाल का इस तरह बिना मिले जेल चले जाना बा के मन को कचोटता था। बाप और बेटे के मन में ऐसी दरार पड़ गयी थी जिसका भरना आसान नहीं था। बाप-बेटा, दोनों कम नहीं थे। दोनों में से एक को टूटना या हटना होगा। पर वह क्या करे, किधर जाए? रहना तो बापू के साथ ही था। क्या बेटा दूर हो जायेगा? बेटा गया तो अगत गया और पति गया तो अगत-विगत दोनों गये। मन ही मन उधेड़-बुन सताती रहती है।

बा को इस पृष्ठभूमि में भी टाल्सटाय फार्म बदला-बदला-सा लगा। हालांकि वह जितनी आत्मनिर्भर फीनिक्स में थी यहां भी थी। हरिलाल का बापू से मिलकर सीधे जेल चला जाना बा के दिल में कसकता था। वह कोशिश करती थी सब तरफ से समेटकर, अपने को टाल्सटाय फार्म की बस्ती बनाने और छोटे बच्चों की देखभाल में लगाये। वहां सभी समुदाय रहते थे। हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई। सभी के बच्चे थे। बा को सभी प्रिय थे। हर व्यक्ति को मौसम के अनुसार दो कम्बल दिये जाते थे। मोहनदास समेत सभी संवासी सस्ते कपड़े के मजदूरों वाले कमीज पजामे पहनते थे। एक केन्द्रीय रसोई थी, जिसमें सबका खाना साथ बनता था। कस्तूरबा को फीनिक्स की तरह यहां भी प्रार्थना में सुकून मिलता था। दो बार प्रार्थना होती थी। सवेरे की प्रार्थना दिन की चाबी थी और शाम की प्रार्थना ताला।

कस्तूरबा का नाता चिन्ताओं से गहरा था। टाल्सटाय फार्म आकर भी वह उनसे मुक्त नहीं थी। बेटों के भविष्य की चिन्ता सतत बनी हुई थी। अधिकतर बच्चे गरीब परिवारों से थे, निरक्षर या साक्षर। आर्थिक हालत अच्छी न होने के साथ अनुशासनहीनता भी थी। निठल्ले होने के कारण वे झगड़ालू होने के साथ बेईमान, गुस्ताख और बिगड़ैल हो गये थे। उन्हें सुधारने के लिए प्यार और सही पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता थी। बा होने के कारण कस्तूरबा को लगता था, उसके अपने बच्चों पर भी दूसरे बच्चों के तौर-तरीकों का असर पड़ रहा है। उसको अपने पति का ध्यान आता था, किस प्रकार उन्होंने अपने दोस्त शेख मेहताब को सुधारने के चक्कर में अपनी बा की सलाह की अनदेखी की थी। उसका असर घर भर पर पड़ा था। वह यह भी जानती थी कि हमेशा की तरह उसके समझाने का पति पर कोई असर नहीं होगा। उसने अपनी चिन्ता कैलनबैक से बांटी। कैलनबैक लड़कों की धमा-चौकड़ी के तौर-तरीकों से अवगत भी था और चिन्तित भी।

कैलनबैक ने दो-चार दिन बाद, मौका देखकर मोहनदास से बच्चों की समस्या पर विस्तार से बात की। एक मिनट तक सोचने के बाद उन्होंने कैलनबैक से ही सवाल किया, 'तुम ही बताओ, मैं क्या करूं?'

'अगर तुम अपने बच्चों को अलग नहीं रख सकते इन बच्चों को निकाल दो।'

'तुम्हारा मतलब है कि मैं अपने बच्चों को विशिष्ट होने का अहसास कराऊं, जो वे नहीं हैं। उन्हें यह जताऊं कि तुम्हें उन बच्चों से अलग रखने के लिए उन बच्चों को निकाला गया है।'

'तुम उन्हें कह सकते हो कि उनको इसलिए बाहर भेजा जा रहा है कि वे गलत काम और व्यवहार करते हैं।'

'क्या मेरा यह कहना उनमें गुस्सा और बेवजह की उत्सुकता पैदा नहीं करेगा, बुराइयां करने के लिए अधिक प्रोत्साहित नहीं करेगा?'

कैलनबैक के विस्तार से बात करने के बावजूद मोहनदास पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। उनका मानना था कि उनके बच्चे धीरे-धीरे समझ जायेंगे कि उन बच्चों का व्यवहार गलत है, वे उन्हें समझायेंगे। नहीं मानेंगे तो अपने को अलग कर लेंगे। हुआ भी, वे बच्चे फार्म पर बाद में भी काफी दिन रहे, पर कोई नुकसान नहीं हुआ। शायद इसका कारण कस्तूरबा की चिन्ता थी, बच्चे बा की चिन्ता को समझते थे। लेकिन 1911 के आरंभ में मोहनदास और हरिलाल के बीच बहुत समय से सुलगता तनाव, जिसे कस्तूरबा इतने दिन से शांत करने में लगी थी, भड़क गया। इस बार उस तनाव को रोकने का कोई रास्ता नहीं था। यह तनाव तब विस्फोटक हुआ जब छगनलाल लंदन पहुंचते ही बीमार हो गया और उसे कानून की पढ़ाई छोड़कर फीनिक्स लौट आना पड़ा। दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीय मूल के नेता यह जानते थे कि उनके बीच कानून जानने वाला मोहनदास गांधी के सिवाय कोई दूसरा नहीं है। इंडियन नेशनल कांग्रेस उन्हें कभी भी भारत बुला सकती है, तब उनका क्या होगा। वे छगनलाल की जगह किसी दूसरे को कानून पढ़ने के लिए भेजने का दबाव बनाने लगे। उन्हें अतिरिक्त पैसा देने में भी कोई आपत्ति नहीं थी। उसके लिए एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गयी। मोहनदास उस प्रतियोगिता के ऐकल जज बनाये गये। क्योंकि वे ही कानून के अकेले ज्ञाता थे। सघन जांच के बाद नेटालवासी पारसी नौजवान सोराबजी अदजनिया को चुन लिया गया। सोराबजी ट्रांसवाल आने वालों और सत्याग्रह करके जेल जाने वालों में पहला नौजवान था।

...क्रमशः अगले अंक में

गतिविधियां एवं समाचार

150वीं वर्षगांठ : महात्मा गांधी और बिहार : आने वाले नूतन वर्ष में पूज्य महात्मा गांधी की 150वीं वर्षगांठ पूरा देश समारोहपूर्वक मनाने की तैयारी में जुटा है। साबरमती आश्रम से लेकर भितिहरवा आश्रम एवं समस्त देश में बापू को याद कर आज की पीढ़ी भी गौरवान्वित महसूस करेगी। बापू का संदेश उनका जीवन की हर गतिविधियां प्रेरणास्रोत हैं। अभी उनकी इसी वर्ष बिहार सरकार ने बापू के बिहार आगमन की 100वीं वर्षगांठ को बड़े ही धूमधाम से मनाया। पटना के ज्ञान भवन में कार्यक्रम की शुभारंभ ही बापू के नमन के साथ हुआ। मैं भी अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूं कि शिक्षा विभाग के द्वारा आयोजन समिति के सदस्य की हैसियत से पूरे कार्यक्रम में उपस्थित रहा। सरकार ने पूरे वर्ष बिहार के हर गांव, पंचायत, प्रखंड और जिला मुख्यालयों में समारोहपूर्वक बापू को याद किया। पूरा बिहार बापू के सम्मान में कोई कसर नहीं छोड़ा। प्रत्येक बच्चों तक बापू का संदेश जाय, इसके लिए प्राइमरी से लेकर उच्च विद्यालयों तक बापू-कथा वाचन कराया गया। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में परिचर्चाएं आयोजित की गयीं। बापू का बिहार से गहरा लगाव था। परिस्थितियां भी कुछ इस तरह की रहीं कि वे चाहकर भी बिहार छोड़कर नहीं जा सकते थे। अंग्रेजी हुकूमत पूरे देश में जमीं हुई थीं। 150 वर्ष से ज्यादा समय से अपने पूरे लाव-लश्कर के साथ शासन व्यवस्था में जमीं थी। जड़ता इस तरह की मानो अत्याचार सहने के आदी हो चुके थे। गांधी का जन्म ही अत्याचार से उबारने के लिए हुआ था, जिसकी शुरुआत दक्षिण अफ्रीका की धरती से प्रारंभ कर सफलता पायी। हौसला बढ़ा और अपने देश में पूरे विश्वास के साथ संघर्ष की शुरुआत की।

–डॉ. विनोद कुमार सिंह

चरखा ग्रामोद्योगों का सूर्यदेव है–सत्यदेव

''चरखा एक क्रियाशील योग है। यह सबसे बड़ा ग्रामोद्योग होने के साथ-साथ चित्त की एकाग्रता, शरीर श्रम तथा वृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन का घनिष्ठ मित्र है।'' कह कहना है श्री सत्यदेव का, जो 92 वर्ष की उम्र में आज भी निरंतर चरखा चलाते हैं।

राजस्थान झुंझुनू जिले के गांव देवरोड निवासी स्वतंत्रता सेनानी तथा वरिष्ठ लोकसेवक श्री सत्यदेव ने एक बातचीत में बताया—''मैंने चरखा कताई 1931 में पिलानी में वर्धा स्कीम स्कूल में पढ़ते समय सीखा था, जो उस समय पाठ्यक्रम का एक भाग था। तब से बराबर चरखा कात रहा हूं। बापू ने कहा था— *'पहने वो काते, काते वो पहने।'* देश की स्वतंत्रता के लिए 1946 में ब्रिटिश हुकूमत की जेल में रहा, तब चरखा कातने की अनुमति गोरी सरकार ने नहीं दी। उस अवधि को छोड़कर आज तक नियमित चरखा कात रहा हूं। 1999 में 33 दिन की यूरोप यात्रा (डब्ल्यूटीओ के विरुद्ध पीपुल्स ग्लोबल एक्शन द्वारा जर्मनी, फ्रांस, इटली, रूस तथा स्विट्जरलैंड आदि देशों में आयोजित विरोध प्रदर्शन में भाग लेने) के समय भी चरखा कातने को नहीं मिला। इसके अलावा मेरा चरखा कभी रुका नहीं।''

उन्होंने चरखे को ग्रामीण जीवन का आधार बताते हुए कहा—''कुछ समय पहले तक गांवों में किसान परिवारों में धनताड़िया चरखा चलता था, जो गांव के कारीगर ही बनाते थे। मेरे गांव देवरोड का चरखा बहुत प्रसिद्ध था। यहां के कारीगर काफी तादाद में चरखे बनाते थे। चरखे से कपास ही नहीं भेड़ और ऊंट के ऊन की भी घरों में कताई होती थी। गांवों में ही ऊनी और सूती कपड़ा बुनकर तैयार कर देते थे। गांव के लोग सर्दी में जो रजाई और सोड़ ठंड से बचाव के लिए ओढ़ते थे, उसे गांव के ही कारीगर बुनकर तैयार करते थे। फुर्सत के दिनों में, जब खेती का काम नहीं होता था, तब घर की स्त्रियां चरखा चलाती थीं, जो उनकी आजीविका का मुख्य जरिया था।''

चरखा कातती हुई मां या दादी से जब बच्चे पूछते थे—''मां ये चांद में काला धब्बा जैसा क्या दिखता है?'' तो उनका जवाब होता था—''ये बूढ़ी माई चरखा चला रही है।'' गांवों में हर परिवार में लड़कियों के विवाह में चरखा अनिवार्य रूप से दिया जाता था, जो आजीविका का एक विकल्प था। सत्यदेव जी ने बताया कि उनके विवाह में मिला चरखा आज भी उनके पास सुरक्षित है।

चरखा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु है। किसी समय कपास पैदा करने से लेकर कपड़ा बुनाई तक यह अनेक लोगों की रोजी-रोटी का सहारा था। कपड़ा सभ्य समाज की बुनियादी और प्राथमिक आवश्यकता है। घर से भूखे निकल सकते हैं, लेकिन नंगे नहीं निकल सकते। चरखे के अपने पारिवारिक इतिहास के बारे में सत्यदेव जी गर्व से बताते हैं—''मेरे पिताजी स्वतंत्रता सेनानी स्व. पन्ने सिंह जी ने 1927 में घर पर खादी का उत्पत्ति केन्द्र खोला था। अखिल भारतीय चरखा संघ की शाखा गोविन्दगढ़ मलिकपुर के कार्यकर्ता मूलचंद अग्रवाल (बीबीसी के प्रतिनिधि रत्नाकर भारतीय के पिता) जब शेखावाटी में आये, तो उन्होंने स्थानीय व्यवसायी तथा विख्यात कांग्रेसी नेता भागीरथमल कानोड़िया की मदद से मुकुन्दगढ़ और देवरोड में खादी उत्पत्ति केन्द्र खोले थे।

सत्यदेव जी का चरखा रोजाना प्रातः 6 बजे चालू हो जाता है, जो मध्यान्ह कुछ विश्राम और भ्रमण के समय को छोड़कर अनथक रूप से दिनभर चलता रहता है। प्रतिदिन लगभग 1200 मीटर सूत का धागा वे अपने चरखे पर कातते हैं। 2 किलो सूत के बदले में 16 मीटर कपड़ा खादी संस्थाएं तैयार करके उनको देते हैं, जिसका उपयोग वे स्वयं और परिवारीजनों पर करते हैं।

सत्यदेव जी के अनुसार चरखा मन की एकाग्रता और समय के सदुपयोग का सबसे अच्छा जरिया है। चरखा सर्वोत्तम योग है।

–भवानी शंकर कुसुम

कविता

मेरा सलाम लेना, मेरा प्रणाम लेना

❑ बशीर अहमद मयूख

तू राम का पुजारी,
रहमान का दुलारा
कुरआन का सिपारा,
गीता समान प्यारा
संदेश बाइबिल का,
गुरु ग्रन्थ की सचाई
हर धर्म-ग्रन्थ तेरा
करता था रहनुमाई
था सामने फिरंगी,
तलवार ले के नंगी
उसके मुकाबले थे,
तेरे अछूत हरिजन
हर कौम थी वतन की,
हर जाति का वतन था,
सब साथ में खड़े थे,
अबाल-वृद्ध-युवजन
ऐसी अलख जगाई,
ऐसा बिगुल बजाया
परतंत्रता के ताले
झकझोर तोड़ डाले
ओ राजघाट वाले,
खादी के ठाठ वाले
मेरा प्रणाम लेना,
मेरा सलाम लेना।
मोहन का दास है तू,
संतान कर्मचंद की
रणक्षेत्र में खड़ा था,
तू कर्मवीर बनकर
जनता-जनार्दन की,
सेना को साथ लेकर
डू ऑर डाई नारा,
लाखों स्वरों को देकर
रिश्तों को तूने जोड़ा,
आपस में भाइयों के
हिन्दू के, मुस्लिमों के,
सिख या इसाइयों के
संदेश विश्व भर को,
बन्धुत्व का दिया है
बांटा है सबको अमरित,
खुद जहर को पिया है
धरती है सबकी माता,
गोरे हों या कि काले
ओ राजघाट वाले,
खादी के ठाठ वाले
मेरा प्रणाम लेना,
मेरा सलाम लेना।
दुख है कि तेरे साथी,
विघटन न रोक पाये
सत्ता के लोलुपों ने,
बांटा अखंड भारत
अलगाववादियों की,
नफरत की नीतियों से,
जलता है आज बापू,
तेरा प्रचंड भारत
सब मिल के चूमते थे
संतों की चौखटों को
तू एक मानता था
अल्लाह और ईश्वर
मन को पवित्र करते
थे वैष्णव जनों के
मंदिर की आरती हो या
हो अज़ान के स्वर
बापू हमें क्षमा कर,
अपराध हो गया है
संस्कृति के हमने साझे,
अनुबंध तोड़ डाले
ओ राजघाट वाले,
खादी के ठाठ वाले
मेरा प्रणाम लेना,
मेरा सलाम लेना।
अणु-युद्ध के शिखर पर,
बैठी है आज दुनिया
यदि ये हुआ तो जग को
अंतिम विनाश देगा
बस एक रास्ता है
गांधी विचार-दर्शन
मरती मनुष्यता को
जीने की आस देगा
कुछ देश दे रहे हैं
हिंसा को दाना-पानी
कुछ देश बोलते हैं,
आतंक की ज़बानी
इतिहास लिख रहा है,
सबकी कथा-कहानी
कवि ने कलम से,
अपने युग की व्यथा बखानी
संदेश दें जगत को
गांधी की ओर आकर
इस आत्मघाती पथ से
रथ अपना मोड़ डालें
ओ राजघाट वाले,
खादी के ठाठ वाले
मेरा प्रणाम लेना,
मेरा सलाम लेना। ❑

सर्वोदय दैनन्दिनी (डायरी) : 2019

आप जानते ही हैं कि सर्व सेवा संघ प्रकाशन **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** नाम से डायरी का प्रकाशन विगत कई वर्षो से करता आ रहा है। इस वर्ष **गांधी जयंती : 2 अक्टूबर** के अवसर पर 'सर्वोदय दैनन्दिनी (डायरी) : 2019' (हिन्दी व अंग्रेजी में) आपूर्ति के लिए उपलब्ध रहेगी।

गत वर्षों की भांति **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** डबल डिमाई साइज में छापी गयी है। कागज, छपाई, बाइण्डिंग आदि के दरों में अत्यधिक वृद्धि होने के बावजूद भी दैनन्दिनी की कीमत मात्र **रुपये 170/-** ही निर्धारित है। **'सर्वोदय दैनन्दिनी : 2019'** के प्रत्येक पृष्ठ पर गांधीजी की ज्ञानवर्धक व जीवनोपयोगी सूक्तियां (हिन्दी व अंग्रेजी) दी गयी हैं। डायरी का आवरण पृष्ठ अत्यधिक आकर्षक, रंगीन व जिल्द बाइण्डिंग तथा रोचक साज-सज्जा के साथ अच्छे कागज पर ऑफसेट द्वारा सुन्दर छपाई है।

डायरी विक्रेता एवं भेंट देने वाले शुभचिन्तक व सर्वोदय विचार प्रेमी साथियों से अनुरोध है कि अग्रिम क्रयादेश शीघ्र भिजवायें ताकि हम समय से आपको डायरी की आपूर्ति कर सकें। गत वर्ष देर से क्रयादेश भिजवाने वाले साथियों को हम डायरी की आपूर्ति नहीं कर पाये थे, जिसका दुःख है।

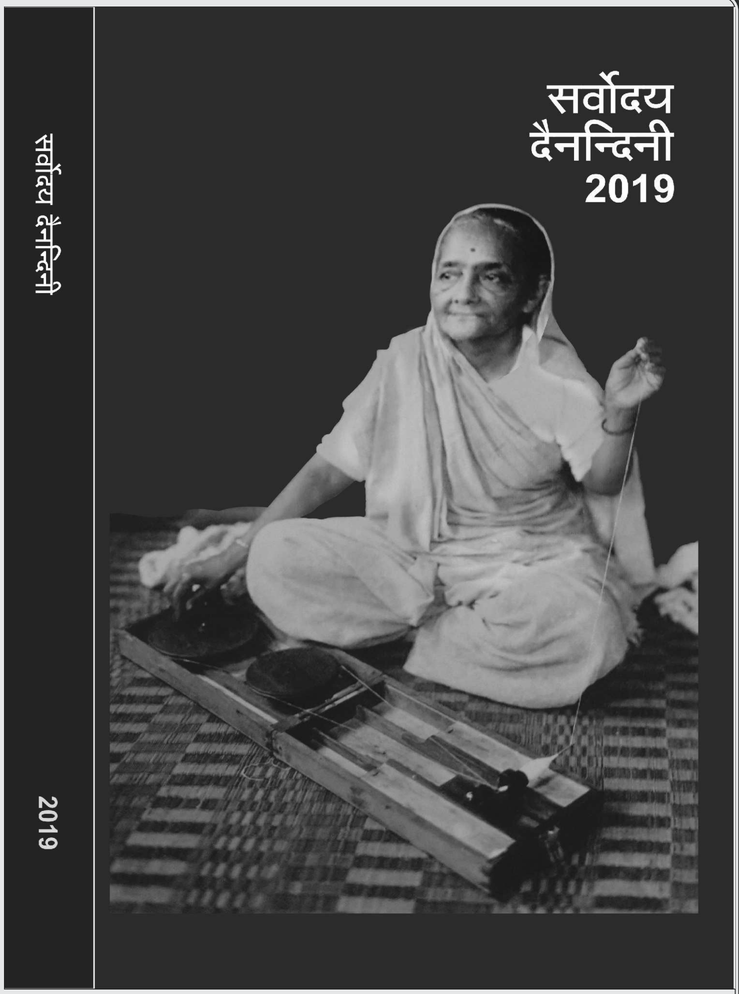

आपूर्ति के नियम

1. एक से 100 डायरी मंगाने पर 25% कमीशन देय होगा, ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
2. 101 से 250 डायरी मंगाने पर 30% कमीशन देय होगा। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
3. 251 से 350 डायरी एक साथ खरीद करने पर 35% कमीशन दिया जायेगा। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
4. 351 से अधिक डायरी मंगवाने पर 40% कमीशन एवं स्टेशन पहुंच की सुविधा दी जायेगी। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का आधा खर्च ग्राहक को देना होगा।
5. बिकी हुई डायरी वापस नहीं ली जायेगी।
6. डायरी की बिक्री पूर्णतया नकद, बैंक के मार्फत होती है।
7. आर्डर भिजवाते समय अपना नाम/पता/मोबाइल नं.और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम साफ-साफ लिखें।
8. डायरी का आर्डर भिजवाते समय 25% रकम अग्रिम अवश्य भिजवायें। डिमाण्ड-ड्राफ्ट 'सर्व सेवा संघ प्रकाशन' के नाम भेजें।
9. रेलगाड़ी की सुविधा नहीं होने पर ट्रांसपोर्ट से पार्सल भेजने के लिए प्रकाशन स्वतन्त्र होगा।

नोट : *रेलवे के असुविधाजनक नये नियमों के कारण पार्सल ट्रांसपोर्ट से मंगाना बेहतर होगा।*

समुचित अपेक्षा के साथ!

–अरविन्द अंजुम, प्रकाशक

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।